पद्य के प्रदीप

मुनिश्री

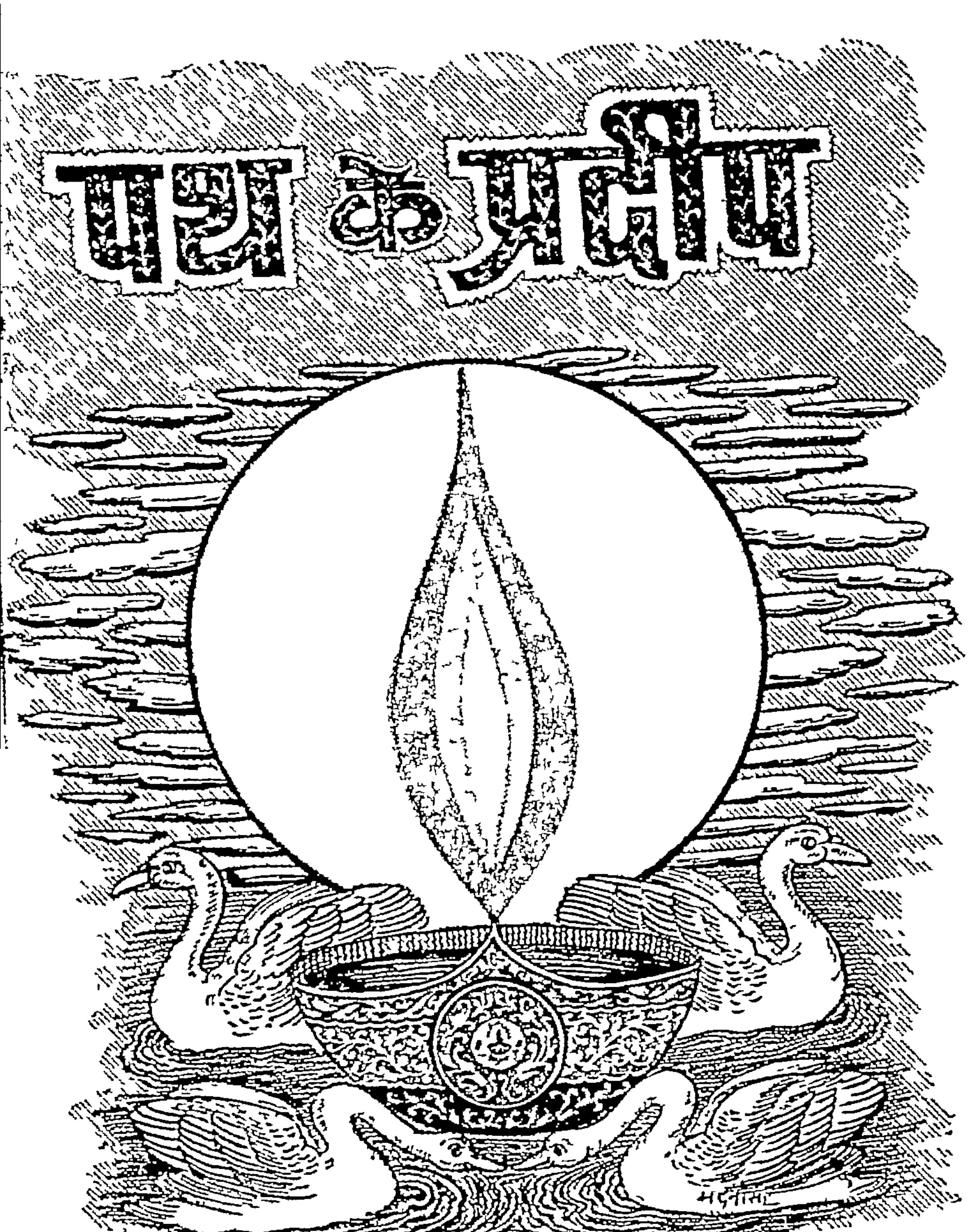

मुनिश्री भद्रगुप्त विजयजी

प्रकाशक

हीराचन्द वैद

पारसमल कटारिया

मानद मत्री

श्री विश्वकल्याण प्रकाशन

आत्मानन्द सभा भवन

घीवालो का रास्ता,

जयपुर–३

वि० सं० २०२६, कार्तिक

मूल्य २ रुपये

प्रथमावृत्ति· १०००

मुद्रकः

अजन्ता प्रिन्टर्स, जौहरी बाजार,

जयपुर–३०२००३

श्री विश्वकल्याण प्रकाशन
(हिन्दी विभाग)
आत्मानन्द सभा भवन
घी वालों का रास्ता जयपुर–३ (राज०)
द्वारा प्राप्त भेंट

लेखक

मुनिराज श्री भद्रगुप्तविजयजी

श्री विश्वकल्याण प्रकाशन, जयपुर की हिन्दी

साहित्य की पंचवर्षीय योजना के

अन्तर्गत पांचवे वर्ष का प्रथम पुष्प

पंच-वर्षीय योजना की १७वीं किताब

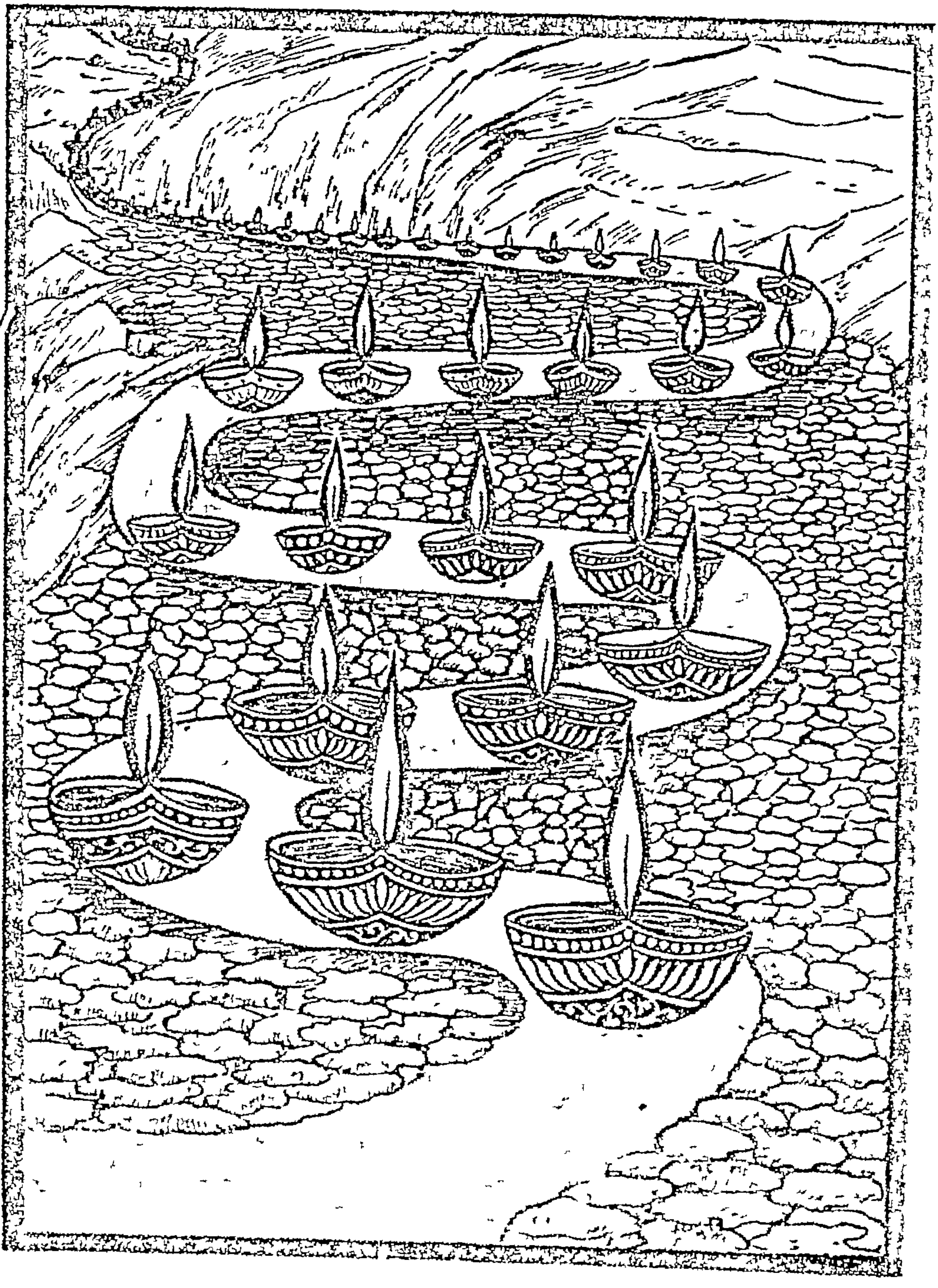

निवेदन

श्री विश्वकल्याण प्रकाशन—जयपुर की पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यह १७वी पुस्तक है। संस्था के पास कोई रिजर्व फंड नही होते हुये भी शंखेश्वरपार्श्वनाथ भगवंत के अचिन्त्य प्रभाव से संस्था अपने पवित्र ध्येय की ओर अग्रसर होती जा रही है।

नये-नये सदस्य बनते जाते हैं और नयी-नयी पुस्तक प्रकाशित होती जा रही है। इस पुस्तक के पश्चात्

'अन्तरनाद'

प्रकाशित होगी। संभवत. इस किताब के साथ ही 'अन्तरनाद' आप को भेज देंगे।

निवेदक
मानद मंत्री
जयपुर
१–१–७३

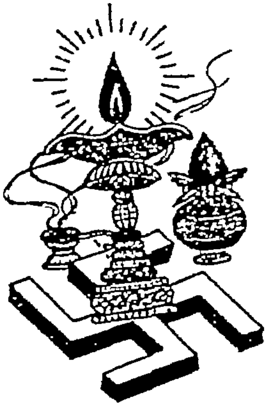

पथ के प्रदीप

यहां जीवनपथ को प्रकाशित करने वाले १०८ दीपक जलाये गये हैं। हाँ, मेरे जीवनपथ को तो प्रकाशित किया ही है..... "अब आपके पास ये १०८ प्रदीप आ रहे है.........मोह-अज्ञान और दुर्बुद्धि के घोर अधकार से व्याप्त जीवनपथ को प्रकाशित करना कितना आवश्यक है ? आप इन प्रदीपो को अपने जीवनमदिर मे स्थापित करे, जीवन-पथ पर स्थापित करे प्रदीपो के प्रकाश मे चलते रहे।

यह मेरा दैनिक चिन्तन है ! आत्मा का संवेदन है और शास्त्रो का मननीय मनन है। चिन्तन के स्पन्दनो को लिखता रहता हूँ.... मेरे मन को संतोष प्राप्त होता है—आपको आनन्द प्राप्त होगा।

मेरी 'डायरी' से सु दर प्रेसकोपी श्रीयुत **चन्दनमलजी लसोड़** [M A.] ने की है। वे धन्यवाद के पात्र हैं। श्री विश्वकल्याण प्रकाशन इस पुस्तक को प्रकाशित करता हुआ पंचमवर्ष मे प्रवेश करता है।

मुनि श्री भद्रगुप्तविजयजी म० सा०

पथ के प्रदीप

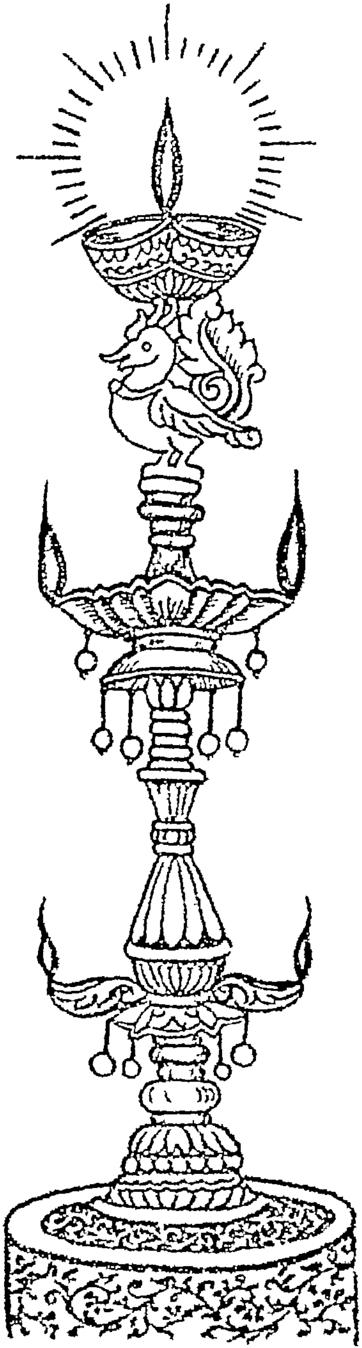

[१]

हे नौजवान ! प्रगति के पथ पर आगे वढो। गति में गुमराह मत हो। प्रगनि मे प्रवल पुरुपार्थ, मजबूत मनोवल व महापुरुषो का मार्गदर्शन अपेक्षित है। चलो, अन्धकार को मिटा दो, प्रकाग तुम्हारे इन्तजार में है।

[२]

कहाँ पहुँचना है, लक्ष्य निश्चित करो। खूव सोच विचार कर निर्णय करो। फिर उस लक्ष्य तक पहुँचने का पुरुपार्थ आरभ करो। हिम्मत से आरम्भ करो।

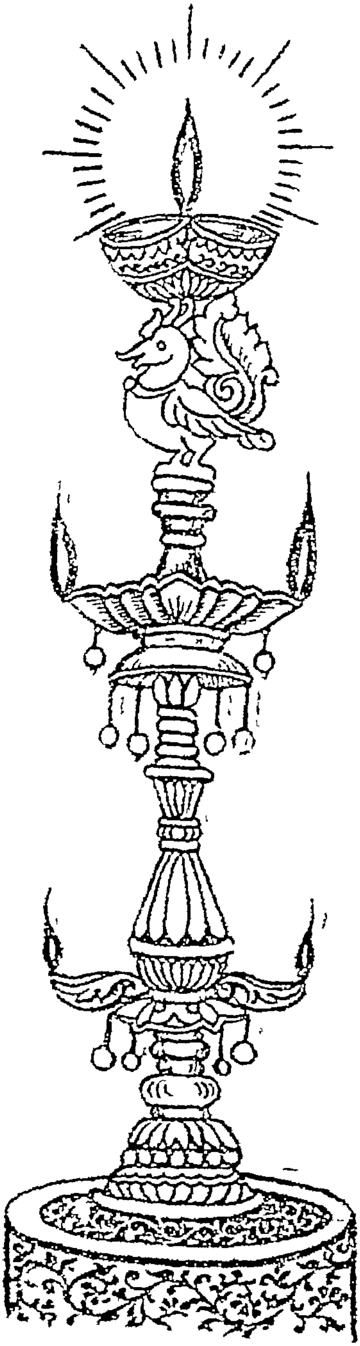

[३]

क्या धर्म के बिना तुम मन की शान्ति प्राप्त कर सकते हो ? तो धर्म की कोई आवश्यकता नही ? मन की शान्ति के बिना ही जीवन जीना है तो धर्म की कोई आवश्यकता नही है । हाँ, मन की शान्ति के लिए आप धर्म के विना और किसी भी जगह फिरो, शान्ति नही मिलेगी । बताइये, आपने कहाँ से शान्ति प्राप्त की ? मैंने तो धर्म से ही शान्ति प्राप्त की है । जीवन में धर्म को स्थान दो, शान्ति अवश्य मिलेगी ।

[४]

क्या आप अपने मन को समझे हो ? मन के विचारो को वासनाओ को और भावनाओ को समझे हो ? आप अपने मन को समझने की कोशिश करो। मन को समझे विना 'मेरा मन चचल है,' यह शिकायत नही करनी चाहिये। मन को समझ कर मन को समझाने का प्रयत्न करो। मालिक तो आप है! मन आपका नौकर है। आप मालिक वन कर मन के साथ व्यवहार करें।

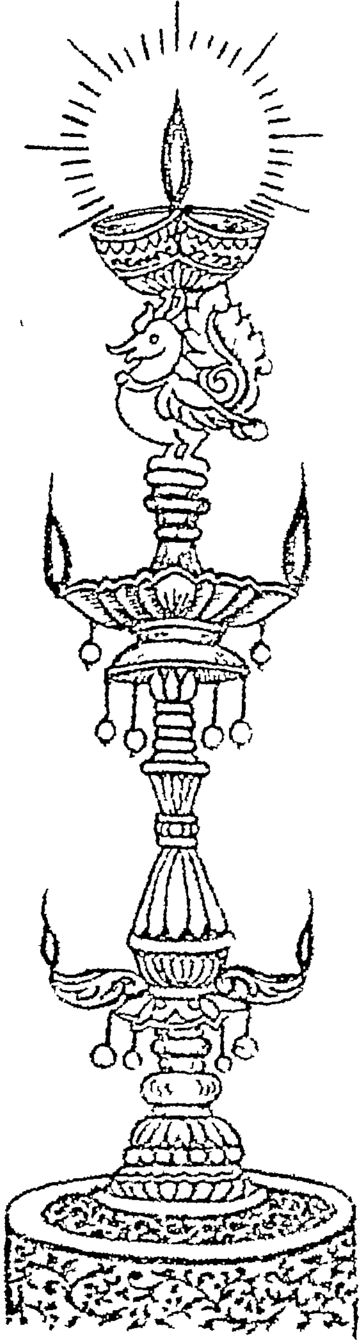

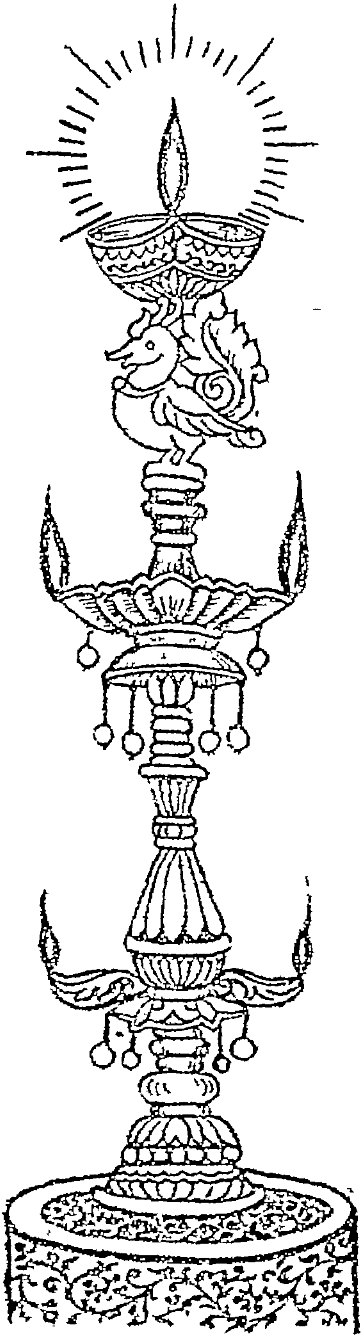

[५]

यह सोचो कि अपना हित किस मे है । हित माने स्वार्थ नही, मगर शुद्धि । आतमा की शुद्धि । इस शुद्धि मे हित है, सुख है । शरीर शुद्धि के बाद विचारो की और भापा की शुद्धि का प्रयोग करो । शरीर की शुद्धि तक ही मत रुको । दूसरो का हित करने की भावना के साथ अपने हित के प्रति जाग्रत रहो । दूसरो का हित करने की क्षमता प्राप्त करो ।

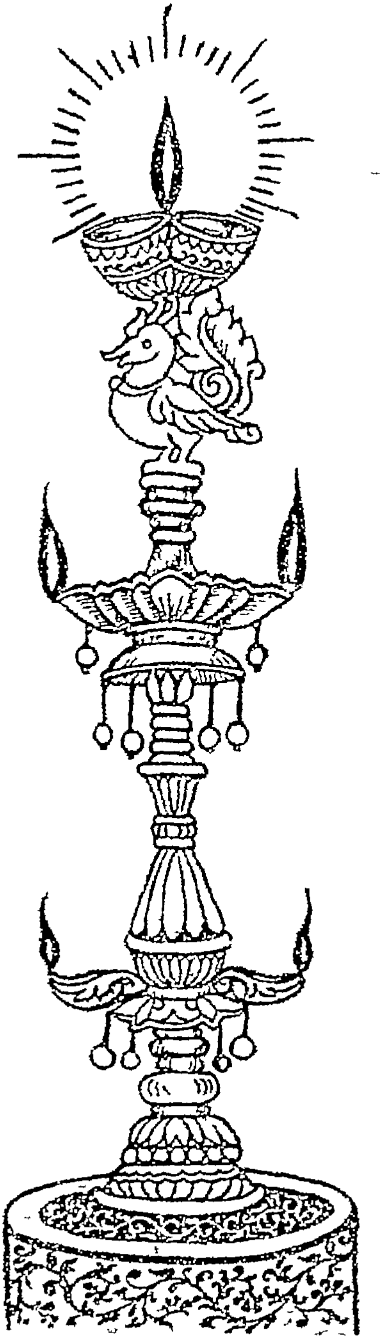

[६]

तू तेरे आनन्द को खोज, लेकिन दूसरे जीवो का आनन्द छीनने का तुझे अविकार नही है। दूसरो की प्रसन्नता छीनकर तू प्रसन्न वनने की चेष्टा करेगा, तो एक दिन तेरी प्रसन्नता भी कोई छीन लेगा। करना तो यह है कि तू दूसरे जीवो को आनन्द से भर दे। दूसरो को प्रसन्नता से नव-पल्लवित कर दे, तू स्वय स्नेह-पल्लवित हो जायगा। तू निर्मल स्नेह का उपासक वन।

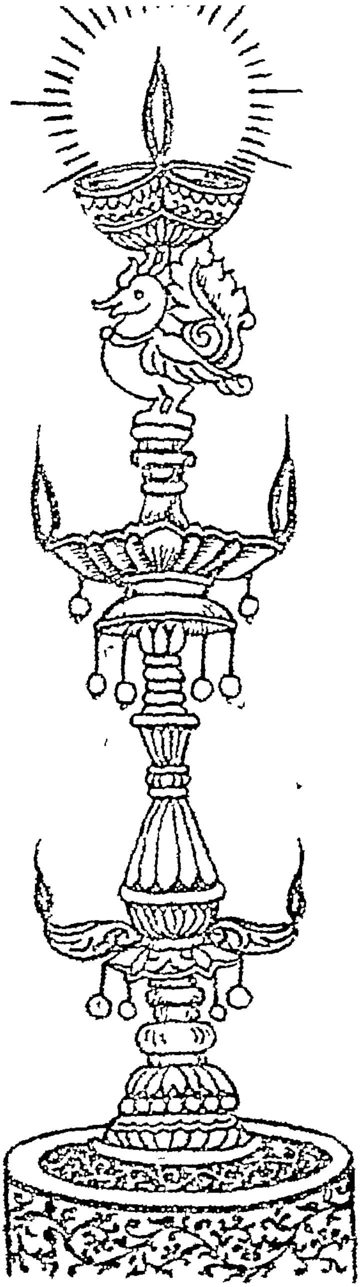

[७]

जीवनमार्ग काटो से व्याप्त है। आकाश मेघाछन्न है। मार्गदर्शक कोई नही है और पगडडी धूल से छिप गई है। पथिक ! जीवन यात्रा के पथिक ! तू आगे बढ ! निराश मत हो। हृदय मे से घबराहट दूर कर। मुख पर प्रसन्नता और दिल मे उल्लास लिये तू आगे बढ।

परम कृपानिधि परमात्मा की दृष्टि तेरे पर है, यह ध्यान में रख। उन पर पूर्ण भरोसा कर… तेरी जीवन यात्रा के वे पथ-प्रदर्शक हैं।

[८]

दु:ख ही तो दृष्टि देता है ! तू दु:खो से क्यो डरता है । आज जो तेरे पास विकसित दृष्टि है, दु:खो की देन है । दु:खो से प्यार कर ··जीवन तेरा आनन्द-मय वन जायगा । दु:खो से दृष्टि प्राप्त करने का प्रयत्न कर ।

[९]

कर्मों की प्रवलता का रुदन करने के वजाय परमात्मा की अनन्त शक्ति पर विश्वास करना श्रेष्ठ है । इससे मन निर्भय वनता है ।

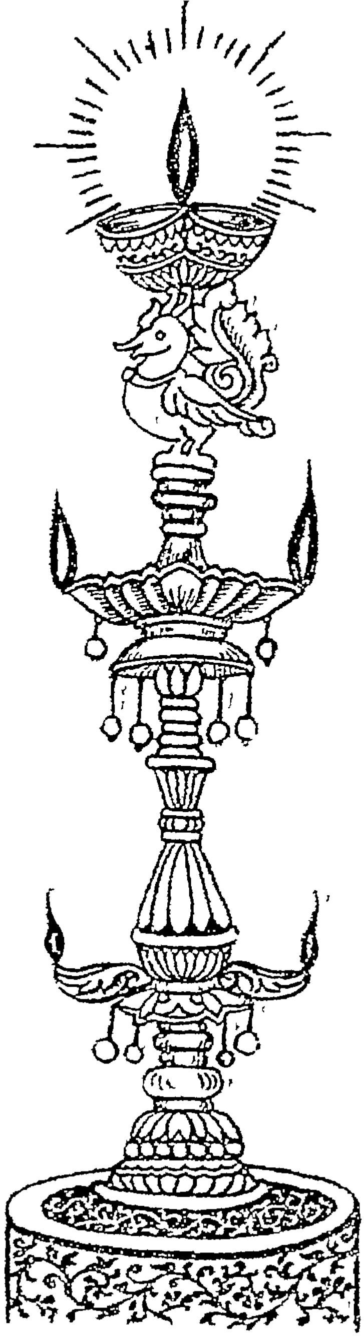

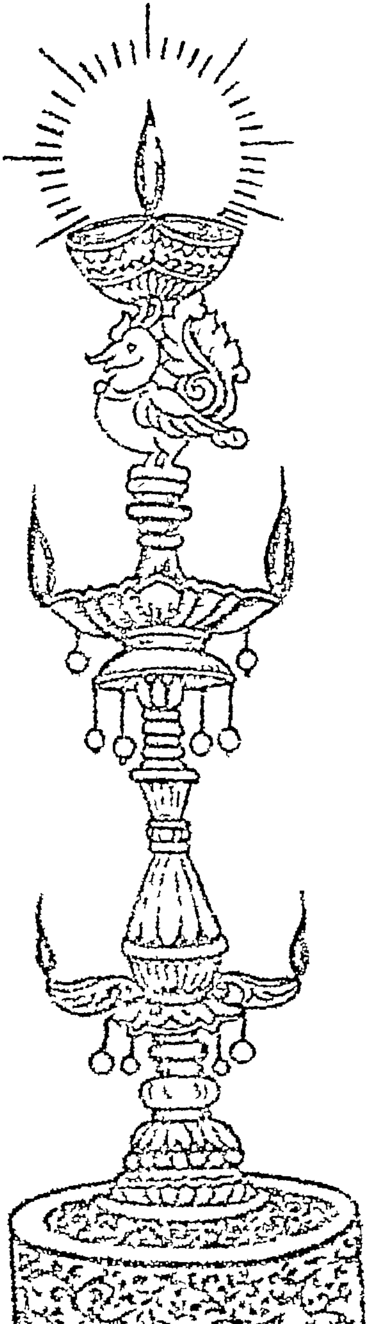

[१०]

तू निःशक हो। मानले कि तेरे पास जितना सुख है, सुख के साधन हैं, सब करुणामय परमात्मा की देन है। तू जब तक यह विश्वास नही करेगा, तब तक परमात्मा के प्रति तेरे हृदय में प्रेम व श्रद्धा जाग्रत नही होगी। परमात्मा की उपासना को तेरे जीवन का लक्ष्य बनादे। घोर कर्म बन्धन भी परमात्मा की कृपा से तत्काल टूट जाते हैं। तू अनुभव करके विश्वास स्थापित कर।

[११]

कर्मों के हाथो से कौन–कौन पराजित हुए, उनका इतिहास जानने से क्या फायदा ? खैर, जानकारी के लिए भले ही, उस दर्द–भरे व पराजय की आहो से कलंकित इतिहास को जानलो, परन्तु जानकारी तो उनके इतिहास की करना है, जिन्होने कर्मों को चकनाचूर कर दिया। कर्मों पर विजय प्राप्त की। ऐसे उदाहरण, ऐसा इतिहास अपने पास रक्खो, जिससे वीरता की प्रेरणा मिलती रहे। कर्मों का भय दूर हो जाय और हम विजयी बनें।

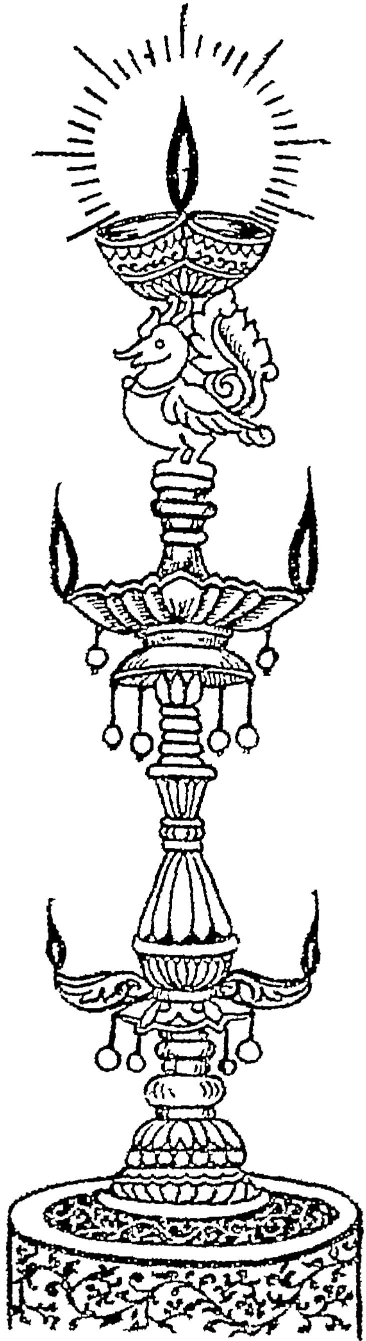

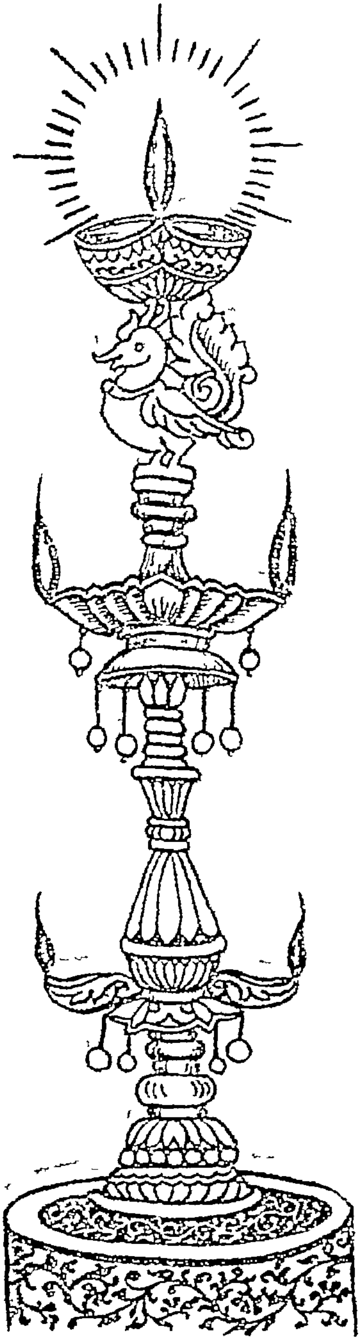

[१२]

पाप को पाप तो मानना ही पडेगा। दु खो का मूल पाप है, यह भी मानना पडेगा। पापो का आकर्षण तब ही टूट सकता है। पापो का आकर्षण टूट जाने के बाद पाप करने पर भी.. पाप हो जाने पर भी, कर्म बध शिथिल होगा। पाप को पाप मानकर, पापो से छुटकारा पाने के लिए योजना Plan बनाइये। दूसरे सब क्षेत्रो मे योजना बनाते है, तो इस क्षेत्र मे क्यो नही ? मरते समय पाप बहुत कम हो जाने चाहिये।

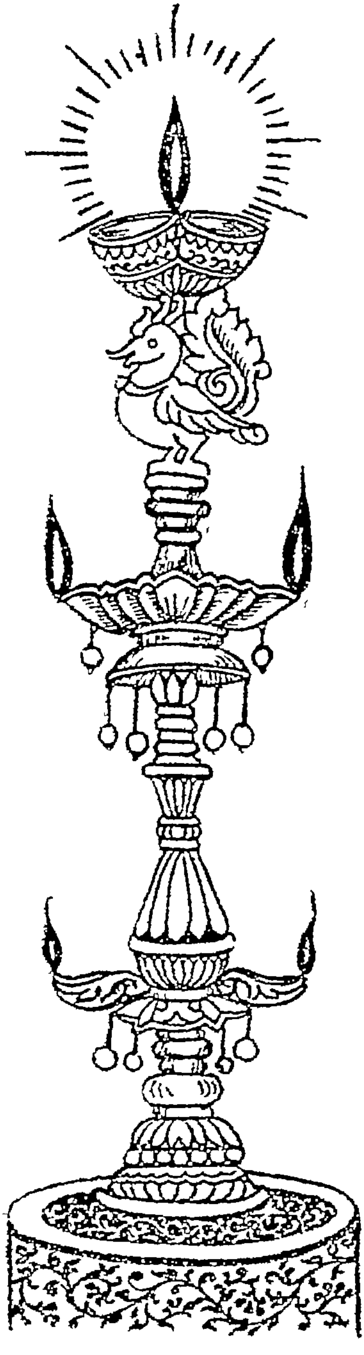

[१३]

तू क्या चाहता है ? कौन सी इच्छाएँ कर रहा है ? मै मना नही करता। तू इच्छाएँ कर, लेकिन ऐसी इच्छाएँ करना, जो तेरे स्वाधीन हो । ऐसी इच्छा मत करना, जिसमे पराधीनता हो । हाँ, तुझे विवेक रखना पडेगा । तू कहता है इच्छाएँ हो जाती हैं, करनी नही पडती । ठीक है, जो इच्छा हो जाय, उस पर तू इतना विचार करना—'इस इच्छा की पूर्ति मैं स्वाधीन रहकर कर सकता हूँ?, तब करना।

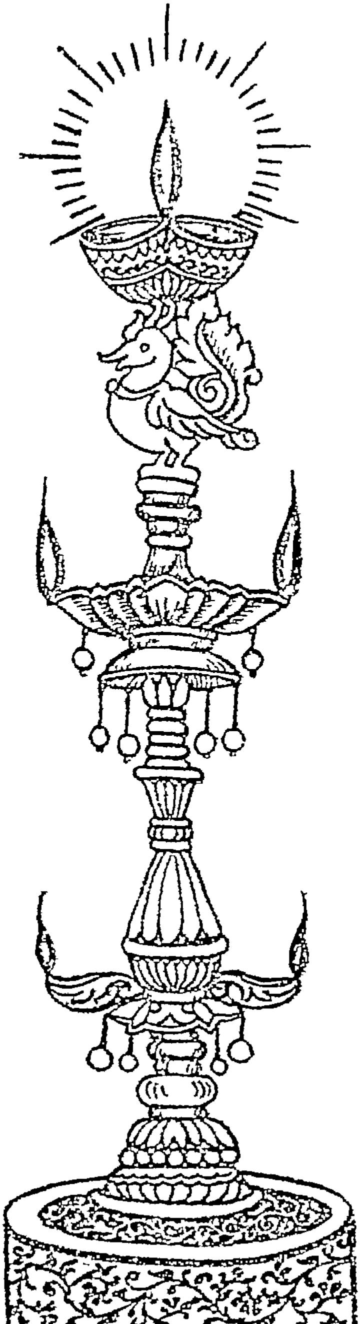

[१४]

भविष्य के सकटो की कल्पना करके तू आज क्यो अशान्त वनता है ? छोड दे ऐमी तुच्छ कल्पनाएँ और मन प्रसन्न रख। ससार मे किसके जीवन मे संकट नही आते ? भोगी के जीवन मे सकट और योगी के जीवन मे भी सकट ! स्वार्थी के जीवन मे सकट और नि स्वार्थी के जीवन मे भी सकट ! सकटो के सामने घुटने टेकने की आवश्यकता नही है, सकटो का वीरता से मुकावला करो। जो सकट आज तेरे सामने नही है, उसके भय से मुक्त हो जा।

[१५]

दुख वाहर से नही आता, दुख के वीज हमारी आत्मा मे ही पडे है। उनको खोद कर फेंक दो फिर दुख पैदा ही नही होगे। दुख के ये वीज हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। ये वीज नही तो दुख नही !

[१६]

तू दूसरो के दोप क्यो देखता है? दूसरे के दोपो का विचार क्यो करता है ? तू छोड दे यह आदत। तेरा दोपपूर्ण व्यक्तित्व तेरी दोप–दृष्टि का ही फल है।

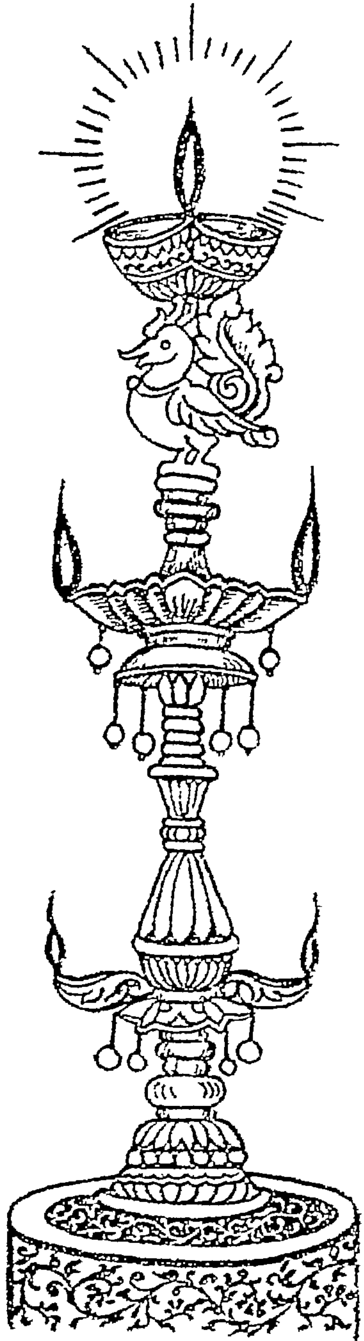

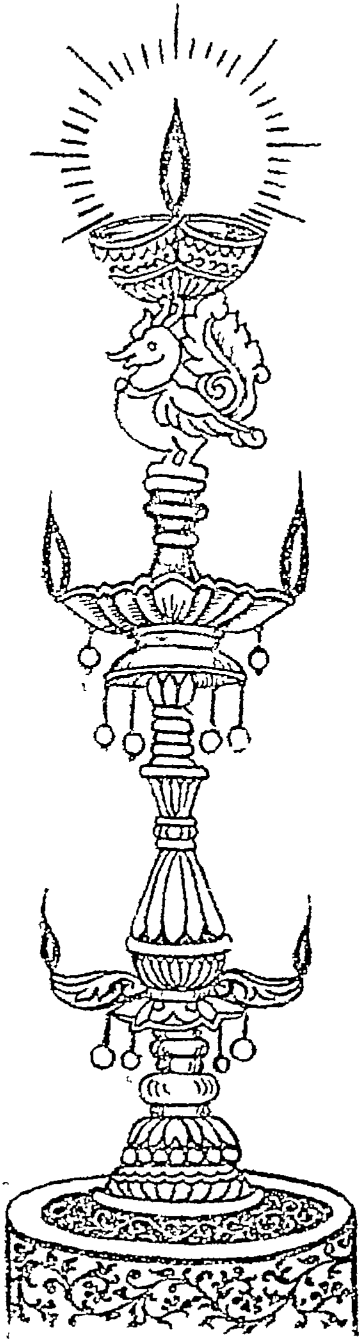

[१७]

देवराज इन्द्र प्रसन्न होकर कहे "ले यह तलवार विश्वविजयी वनेगा"। "मै कहूँगा "मुझे विश्व-विजय नही चाहिये।" "तो ले यह पारसमणि, विश्व की सम्पत्ति का मालिक वनेगा"। "मैं कहूँगा. "मुझे सम्पत्ति का क्या करना है ?" वे कहेगे "तो ले ये वीज, वोना। इनसे जीव–जीव मे मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य प्रकट होगा' सुरभि से विश्व सुवासित हो उठेगा।" मैं हर्ष से नाच उठूंगा और उन वीजो को लेकर आत्मभूमि मे वोऊंगा। दूसरो को भी दूंगा।

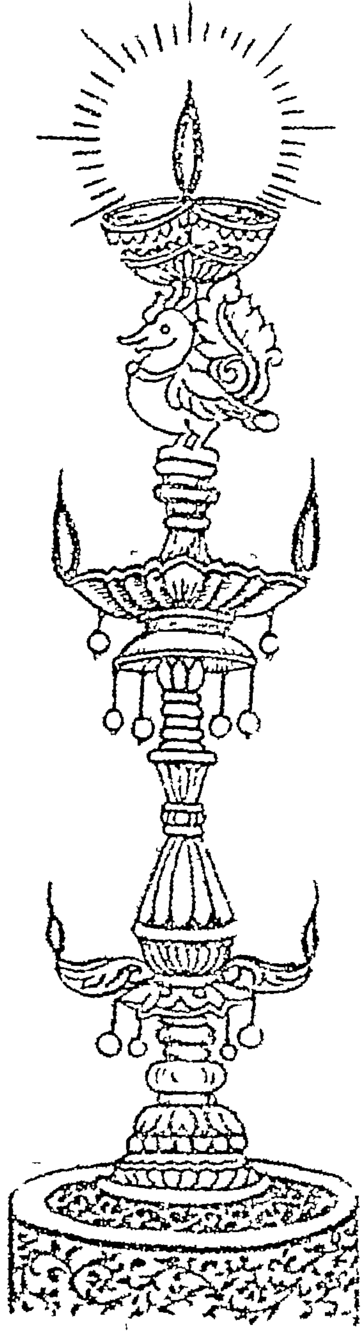

[१८]

जो चीज जिस समय चाहिये, उस समय वह चीज नही मिलती है, तो मन अशान्त बन जाता है। अशान्ति को मिटाने का एक सरल उपाय है: 'जिस समय जो मिले, उसमे से सन्तोष और आनन्द प्राप्त करो अथवा यह श्रद्धा धारण करो कि इस समय जो मै चाहता था, वह नही मिला, इसमें ही मेरा भला होने वाला होगा!' मन को प्रसन्न रखने की कला अपने पास होनी ही चाहिये। अन्यथा जीवन जीना मुश्किल हो जायगा।

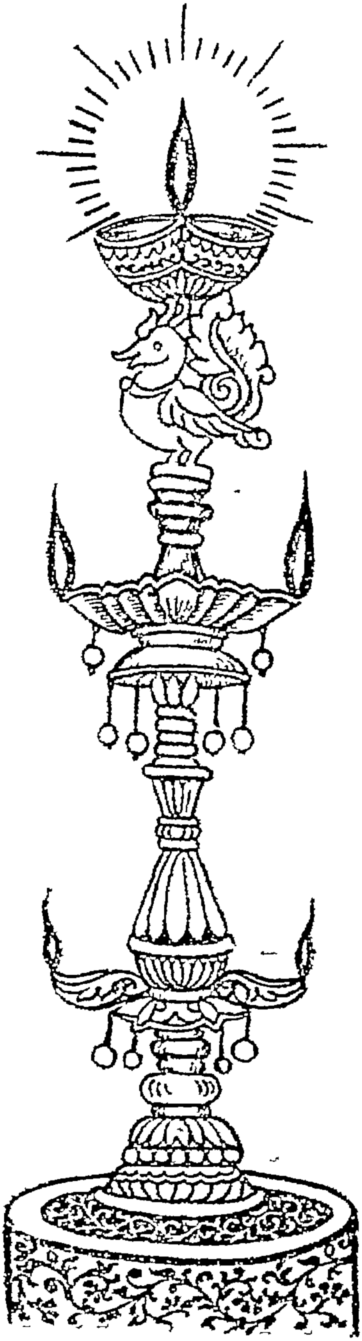

[१९]

समाजवाद से क्या और साम्य-वाद से क्या ? जो वाद हमारे तन-मन के दुख न मिटा सके, ऐसे वादो मे हम क्यो उलझे ? तन-मन के दुखो को मिटाने वाला है, आत्मवाद । आत्मवादी वनें । आत्मा की अनन्तशक्ति अनन्तगुण और अविकारी स्वरूप मे श्रद्धा-वान् वनें । अपनी आत्मा के समान ससार की सब आत्माओ को माने और किसी भी आत्मा को दु.खी न करे ।

[२०]

भोग सुख मे डूव जाना अलग है और डुवकी (गोता) लगाना अलग है। भोग सुख में गोता लगाने वाला वाहर निकल आता है और त्याग के मार्ग पर आगे वढ़ता है। भारतीय सस्कृति मे अर्थ और काम कितना स्थान रखते है ? मात्र साधन रूप में। लक्ष्य तो है, मोक्ष। मोक्षमार्ग है, धर्म। अर्थ काम मे डूवो मत ? गोता लगाना हो तो लगाकर वाहर निकलो और आगे वढो ?

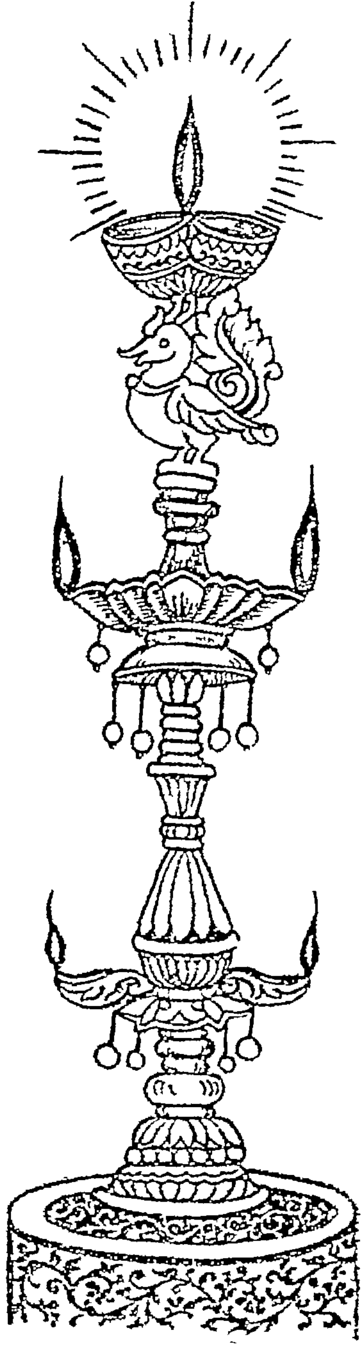

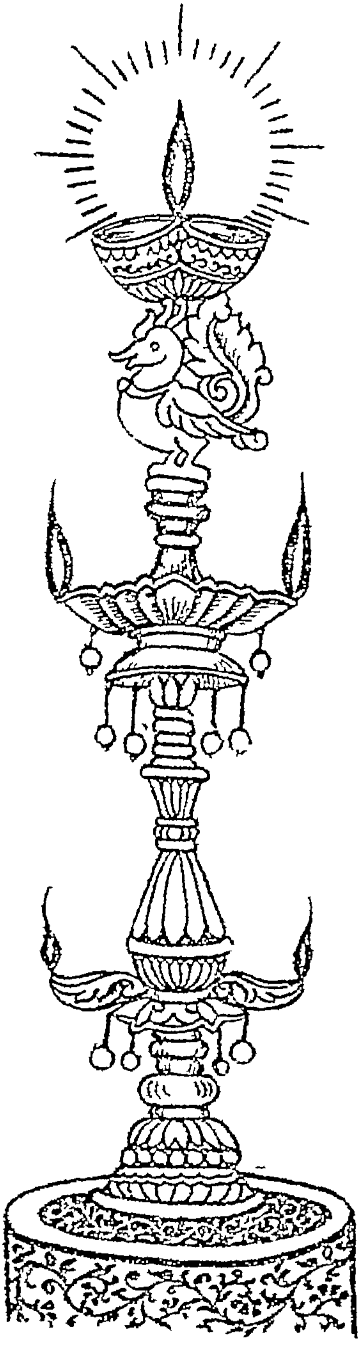

[२१]

परमात्मा से मै क्या मागू ? मुझे श्रद्धा है कि परमात्मा देते है परन्तु मै क्या मागू ? मेरे लिए जो आवश्यक साधन है, क्या मुझे नही मिले है ? जितने साधन मेरे पास है, मै उन साधनो का सदुपयोग नही कर रहा हूँ क्या मैं उनके सदुपयोग की कला मांगू ? हाँ, मनुष्य जीवन, पाँच इन्द्रिय, चिन्तनशील मन वगैरह का सदुपयोग करना मुझे आजाए" "तो ? परमात्मा! मुझे यह कला देदो।

[२२]

जब तक मै पर्यायदृष्टा हूँ, तब तक शान्ति नही मिलेगी। मुझे द्रव्य दृष्टा बनना चाहिये। शुद्ध आत्मद्रव्य का चिन्तन शान्ति प्रदान कर सकता है। पर्यायदर्शन मे मात्र राग-द्वेष है।

[२३]

और कुछ आराधना नही होती है? तो परमात्मा का नाम व परमात्मा की आकृति से स्नेह जोड दो। परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित कर दो।

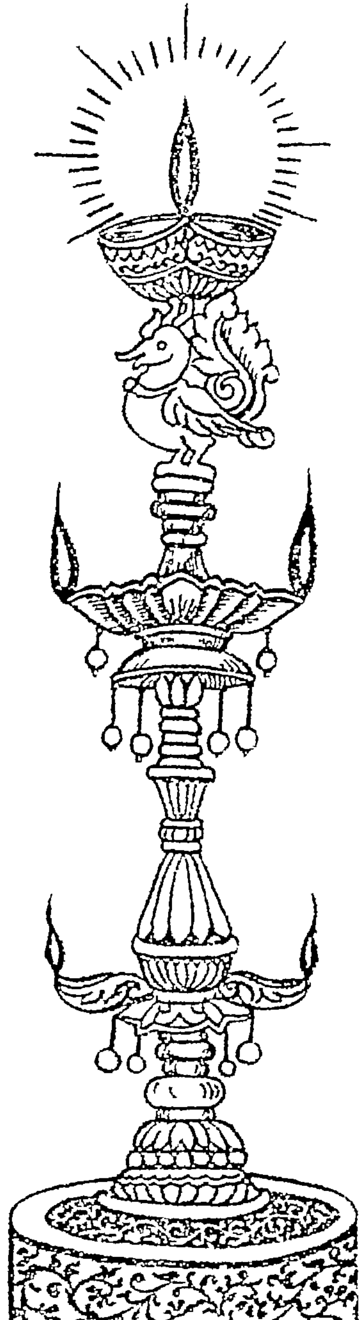

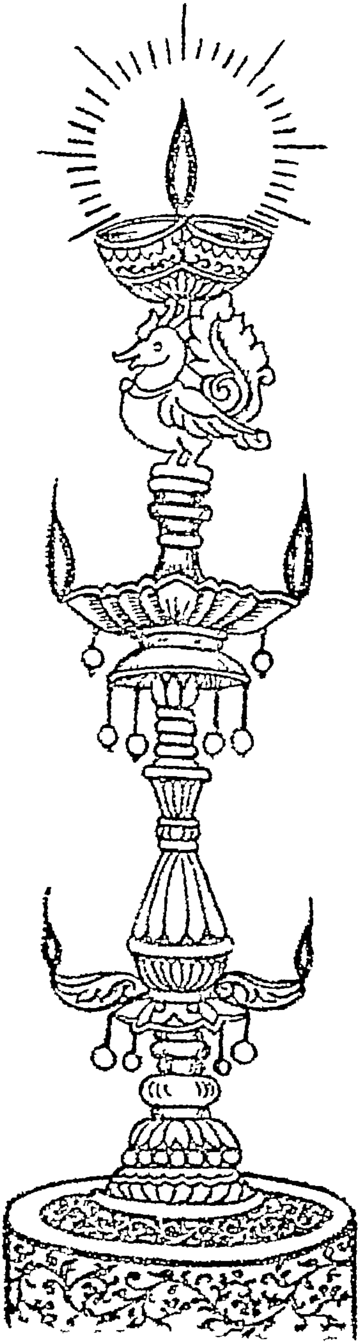

[२४]

हर व्यक्ति के अपने प्रश्न हैं, अपनी समस्याएँ हैं । यदि व्यक्ति के पास ज्ञानदृष्टि है, तो वह अपने प्रश्नो को इस प्रकार सुलझाने की चेष्टा करेगा कि नाना प्रश्न पैदा न हो। यदि ज्ञानदृष्टि नही है, तो प्रश्न सुलझाते-सुलझाते नया प्रश्न पैदा कर देगा। जीवन की समस्याओ को सुलझाने वाली ज्ञानदृष्टि प्राप्त करना अति आवश्यक है । ऐसी ज्ञानदृष्टि शास्त्रो के अध्ययन-परिशीलन से प्राप्त होती है।

[२५]

देश मे पवित्र आचारो का अव-मूल्यन हो रहा है। मर्यादाओ की 'स्वातन्त्र्य' के नाम पर हत्या हो रही है और धर्म के नाम पर घृणा पैदा की जा रही है · ऐसी परस्थिति मे सदाचारी वना रहना कितना मुश्किल है ? मर्यादाओ का पालन कितना कठोर है ? और धर्म पर श्रद्धा · · ··कितनी विकट है ? देखो, विशाल दृष्टि से देखो, वदलती दुनियां को देखो ·· ·।

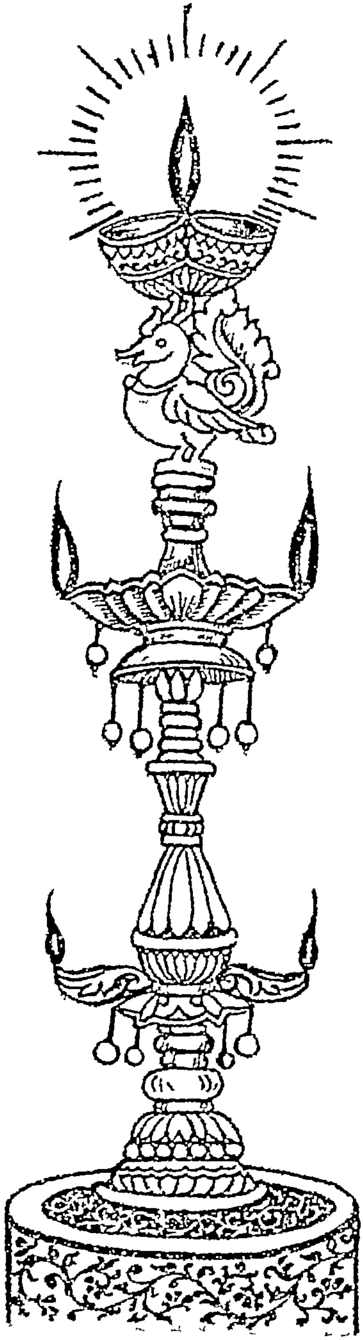

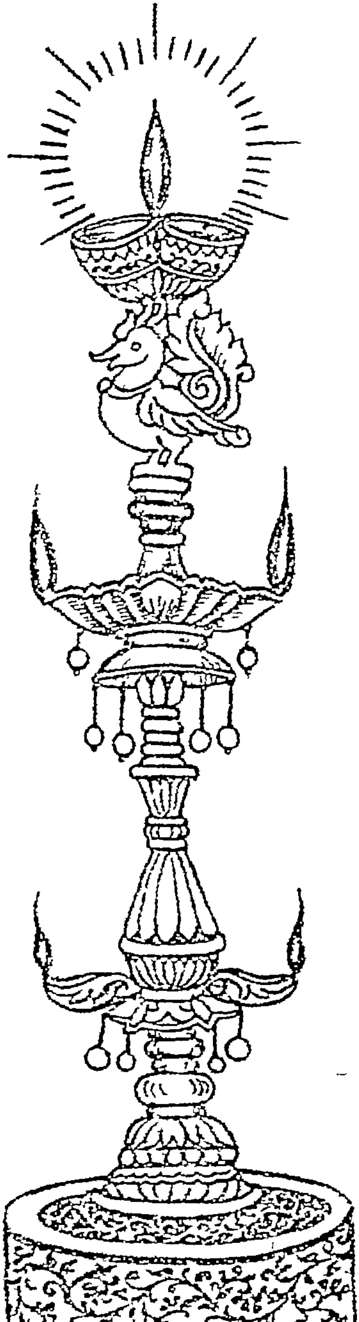

[२६]

दुःख क्या है ? अपनी कल्पना मात्र है । कल्पना वदल दो । कल्पना वदलने की भी एक कला है । किसी भी दु ख को सुख मे वदला जा सकता है, परन्तु यह कला हमारे पास नही होने के कारण हम दु.खी वने रहते है । महापुरुषो के जीवनचरित्र यदि हम इस दृष्टि से पढें, तो यह कला प्राप्त हो सकती है । हमारे पूर्वकालीन महापुरुषो के जीवन ऐसी कला से भरपूर थे । अरे, भगवान् महावीर स्वामी का जीवन ही देखो · ··कला मिल जायेगी ।

[२७]

'लोक खलु आधार. सर्वेपा ब्रह्मचागीणाम्' । साधुपुरुपो का आवार लोक है, अर्थात् समाज है। आर्य संस्कृति के आधार पर वनी हुई समाज-व्यवस्था साधु-पुरुपो की साधना मे सहायक वन सकती है , यदि समाज व्यवस्था आर्यसस्कृति से पृथक् हो जाय तो साधुपुरुषो की साधना क्षति-ग्रस्त हो जाय। इसलिए समाज व्यवस्था के प्रति साधुपुरुषो को लक्ष्य करना चाहिये, उपेक्षा नही करना चाहिये।

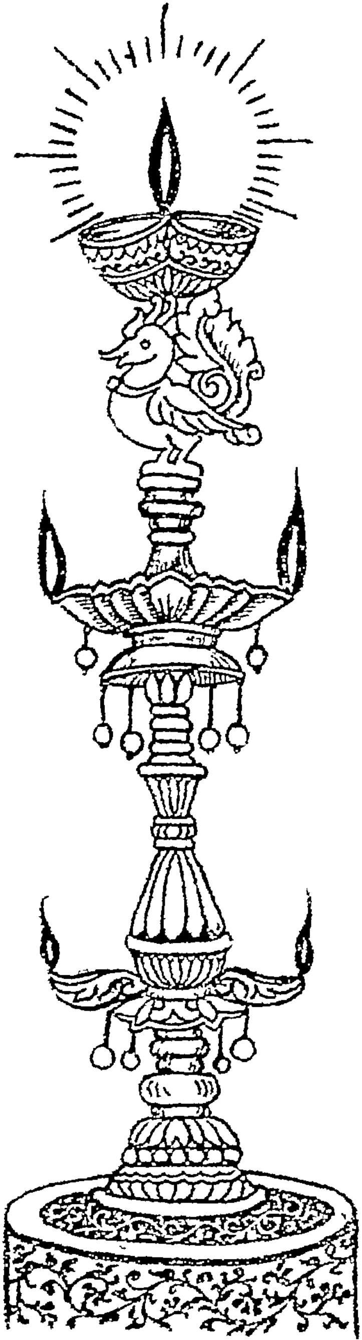

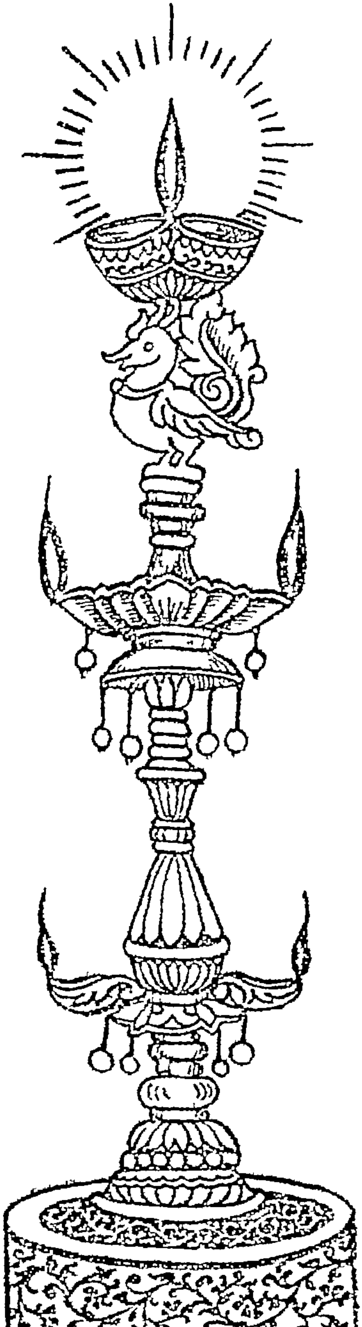

[२८]

प्रतिदिन नया ज्ञान प्राप्त करे। ऐसा ज्ञान प्राप्त करें कि जो मन पर छाये हुए अज्ञान के अन्धकार को मिटादे ओर मन को प्रकाशित कर दे। अपनी शान्ति " प्रसन्नता, पवित्रता बनाये रखने के लिए वह ज्ञान उपयोगी बने। ऐसा ज्ञान ऋषि-महऋषिओ के ग्रन्थो से मिलता है, ऐसा मेरा अनुभव है। ग्रन्थो के शब्द पर चिन्तन करना चाहिये। मात्र विद्वत्ता के लिए पढने से फायदा नही है।

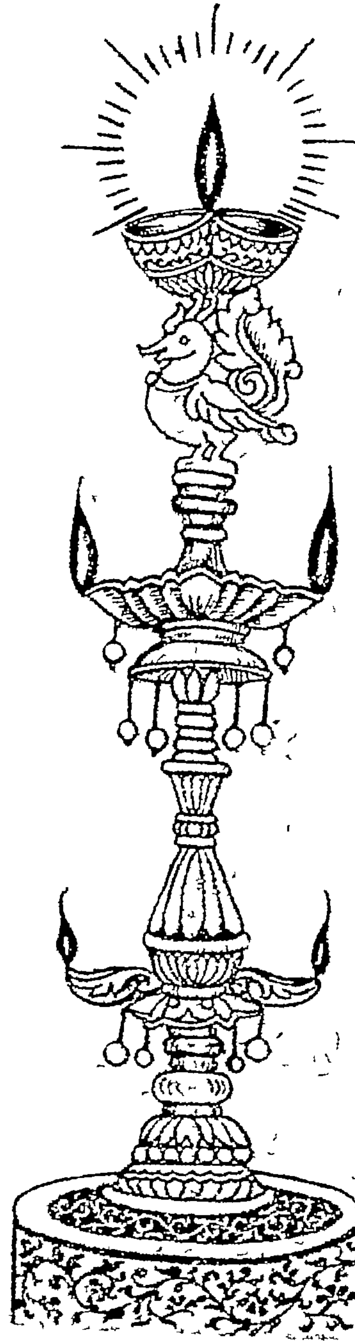

[२९]

सदाचारो के पालन से जीवन मे शान्ति मिलती है। सदाचारो को छोडकर सुख पाने का पुरुषार्थ करने से सुख के साथ अशान्ति मिलती है। अशान्ति मे सुख का उपभोग नही हो सकता।

[३०]

ब्रह्मचर्य का पालन दुष्कर है, परन्तु दृष्टि की निर्मलता बढाने से दुष्कर भी सुकर बन जाता है। दृष्टिदोष से बचते रहो।

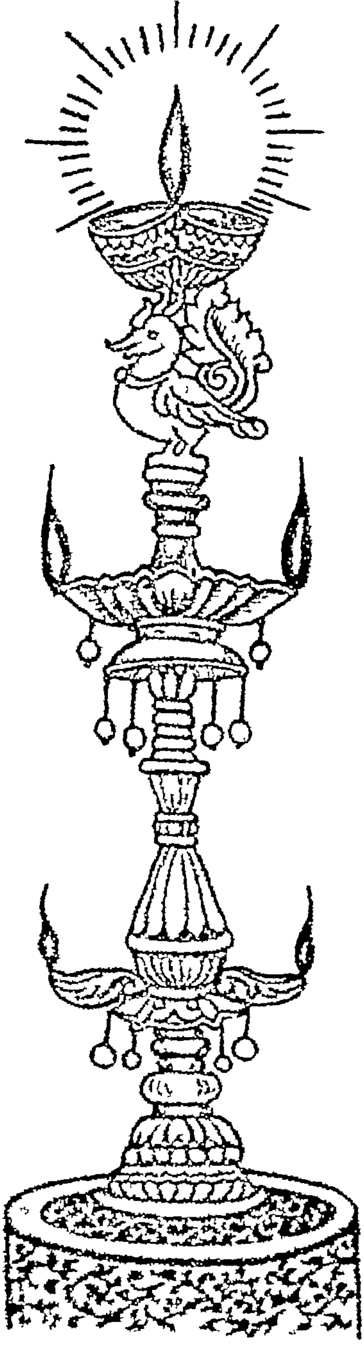

[३१]

बोलने दो दुनिया को ! दुनिया की तरफ मत देखो। इस प्रकार तो दुनिया ने कइयो की बुराई की है। दुनिया का यही ढग है। लेकिन एक बात सुनलो ! दुनिया मे अपनी प्रशसा सुनने की कामना तो नही है न ? हाँ, दुनिया की प्रशसा सुननी है, तो बुराई भी सुनना पडेगी ! स्व प्रशंसा की भूख भयकर है, उसको ही मिटादो। दुनिया की प्रशसा से क्या और निन्दा से क्या ? क्षणिक आनन्द ! परमात्मा की दृष्टि मे निर्मल बनते चलो !

पथ के प्रदीप

[३२]

मांडवगढ के महामत्री पेथड-शाह का जीवन चरित्र मननीय है। अनेक पहलूओ से मैने उनका जीवन देखा है······· मुझे अत्यन्त प्रेरणादायी लगा है। स्वर्णसिद्धि के प्रयोग मे प्रचुर हिसा देखकर आबू के पहाड पर भगवान के सामने रो पडे थे और पुन. स्वर्ण-सिद्धि न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। ३२ वर्ष की युवावस्था मे ब्रह्मचर्य का पालन करने की प्रतिज्ञा ले ली थी और मनसा-वचसा-कायेन उसका पालन किया था।

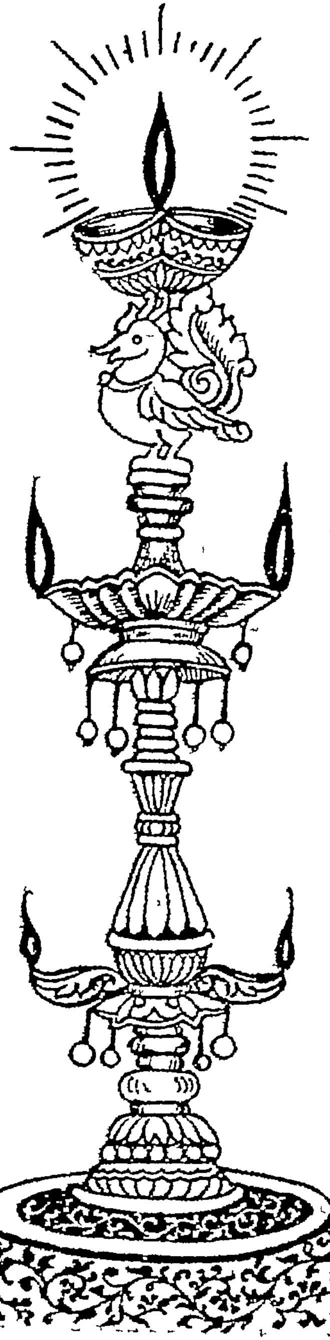

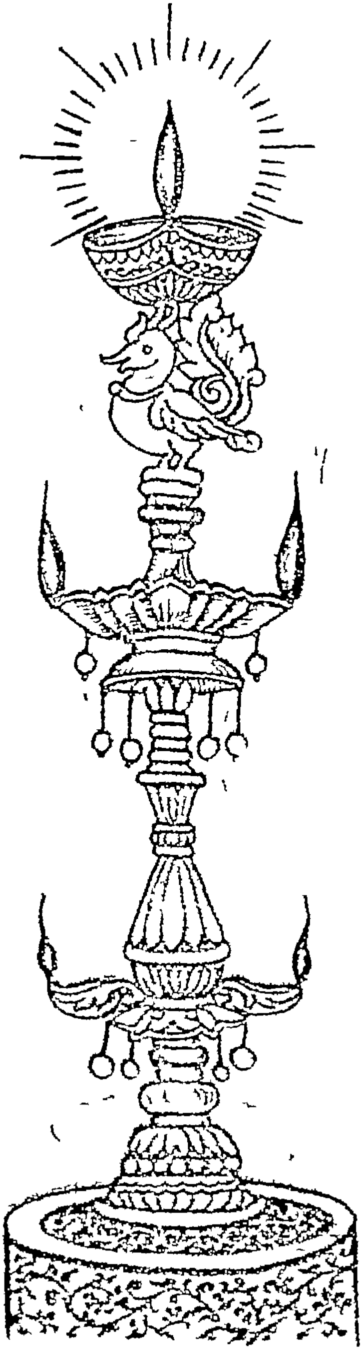

[३३]

इससे भी ज्यादा सुनलो ! राजा की रानी लीलावती का ज्वर मिटाने के लिए अपनी शाल दी " "तो आल आया ! राजा ने ही दोनो को कलकित किया " उस समय महामत्री ने अपनी ही सलामती नही सोची"; प्राणो का खतरा मोल लेकर लीलावती को अपनी ही हवेली मे गुप्तरूप से रखा और १ लाख नवकार जपवाये ! स्वय स्वस्थ रहे, प्रसन्न रहे और सकट को टाला !

पथ के प्रदीप

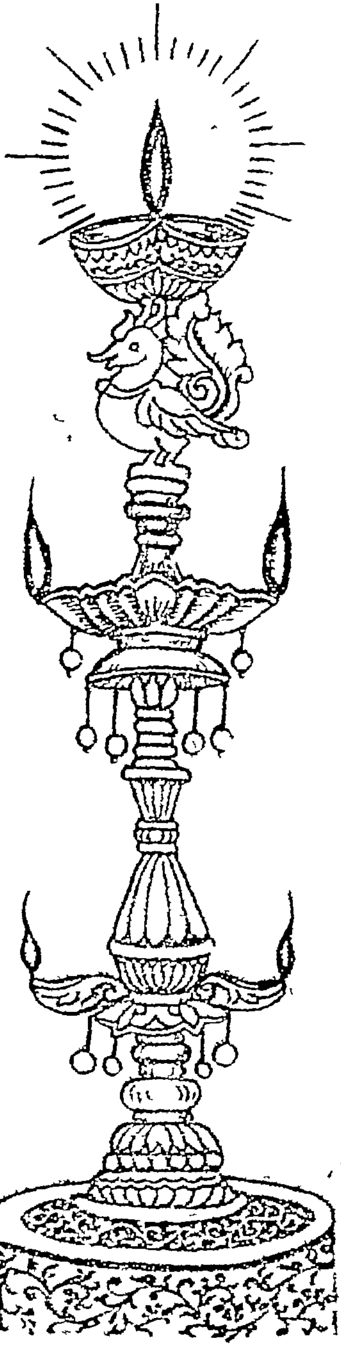

[३४]

यदि आप स्वय शास्त्र नही पढ सकते हैं, तो शास्त्रज्ञानी का सत्सग करे। यदि आप स्वय चिन्तको के साथ सम्पर्क वनाये रखे। यदि आप स्वय मोक्षमार्ग पर नही चल सकते तो किसी का सहयोग लेकर चलते रहे। परन्तु निराश होकर, भयभीत होकर वैठे न रहे। जिन्दगी छोटी है और काम ज्यादा है" "मजिल दूर है" "वैठने का समय नही है।

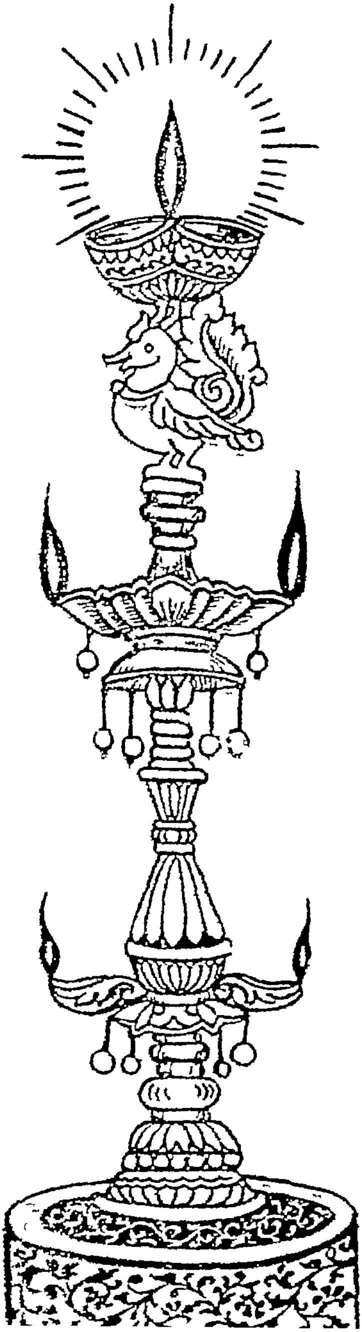

[३५]

"पाप सुख देने वाले लगते है ! जो सुख दे, वह पाप नही !" कैसी भ्रामक मान्यता हृदय मे दृढ हो गई है ? हृदय मे ऐसी मान्यता प्रतिष्ठित हो और बाहर से धर्मक्रियाएँ करे ! वाह… कैसी हमारी श्रद्धा है ! अरे भैया, पापो से सुख मिलता तो दुनिया मे सुखी लोग 'मेजोरिटी' मे होते ! हैं क्या सुखी की 'मेजोरीटी' ? नही ! दु खी ही ज्यादा हैं ! क्यो? पापी ज्यादा है, इसलिये !

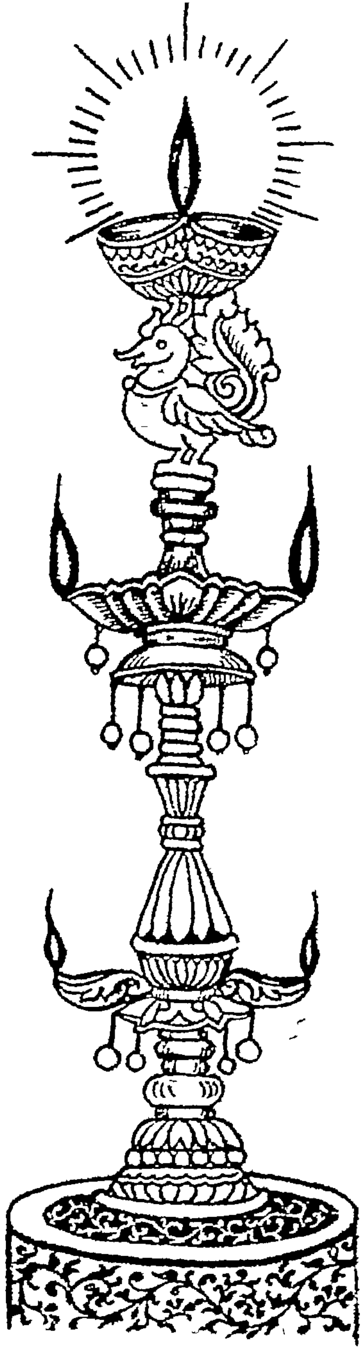

[३६]

दूसरे मनुष्य का मन समझकर, उसको सुधारने का प्रयत्न करो। उसके मन के प्रश्न समझने की आवश्यकता है। मन को धोने की प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिये। इसलिए दूसरो के प्रति करुणा चाहिये, धिक्कार नही।

[३७]

ऐसा जीवन जीना है कि मेरी ओर से किसी को भी अशान्ति न हो, दु:ख न हो। क्या मेरी यह कामना इस संसार मे सफल वन सकती है?

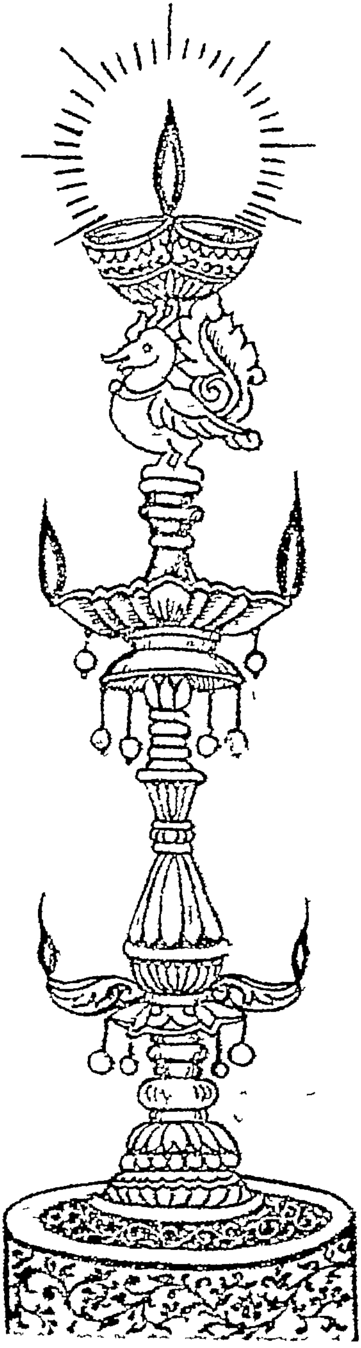

[३८]

कम से कम आवश्यकताओ मे जीवन व्यतीत हो जाय तो कितना अच्छा । आवश्यकताओ की कोई सीमा ही नही । ५-५० वर्ष की जिन्दगी और ५-२५ हजार आवश्यकता । अनुकूल साधनो की उपलब्धि मे मन-वचन-काया की कितनी शक्ति चली जाती है । क्या मानव जीवन इसीलिये है ? अनुकूलताओ की भीड मे भगवान् से मै कैसे मिलूँ ? कैसे बात करूँ ?

[३९]

पत्थर–आप कौन है ?
वीतराग–मैं वीतराग हूँ।
पत्थर–वीतराग कैसे ?
वीनराग–मेरे मे राग नही है,
द्वेष नही है।

पत्थर–अच्छा, तब तो मै भी
वीतराग! मेरे मे भी राग
नही है, द्वेष नही है!

वीतराग–ठीक है, राग-द्वेष तेरे
मे नही है, लेकिन
पाषाण की कठोरता तो
है न ? सर्व जीवो के
प्रति करुणाभाव कहाँ है?

पत्थर वीनराग को झुक गया
.... वीतराग ने पत्थर को

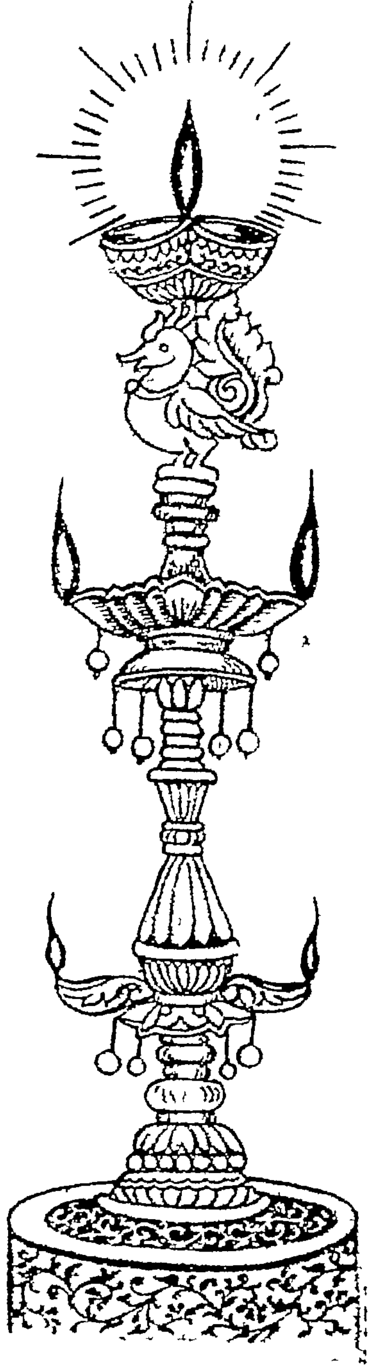

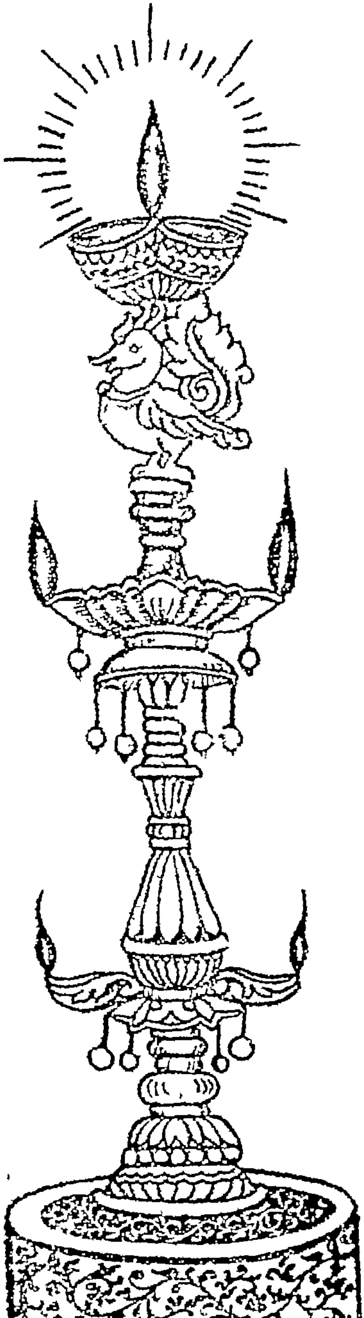

अपना बाह्यरूप दिया · ·वीतराग की मूर्ति बनी · ·पाषण-वीतराग का अभेद मिलन हुआ · ··· विश्व मे दोनो की कीर्ति बढ गई ।

वीतरागता के साथ सकल विश्व के प्रति अनन्तकरुणा परमात्मा की विशेषता है । वीतरागता मात्र तो पत्थर मे भी है ! परमात्मा की अनन्त-करुणा के पात्र बने ।

[४०]

हम परम सुख का मार्ग वताते है, इसका अर्थ यह नही है कि हम परम सुखी हो गये हैं। हमने प्राचीन ग्रन्थो मे जो परम सुख का मार्ग देखा, उसे आपको वताया। सभव है कि आपको यह मार्ग पसन्द आजाय और मार्ग वताने वाला उस मार्ग पर न भी चले! वह स्वय नही चलता है इसलिये वह खराव? नही। ट्राफिक पुलिस एक जगह खडा ही रहता है और रास्ता वताता है क्या वह खराव है?

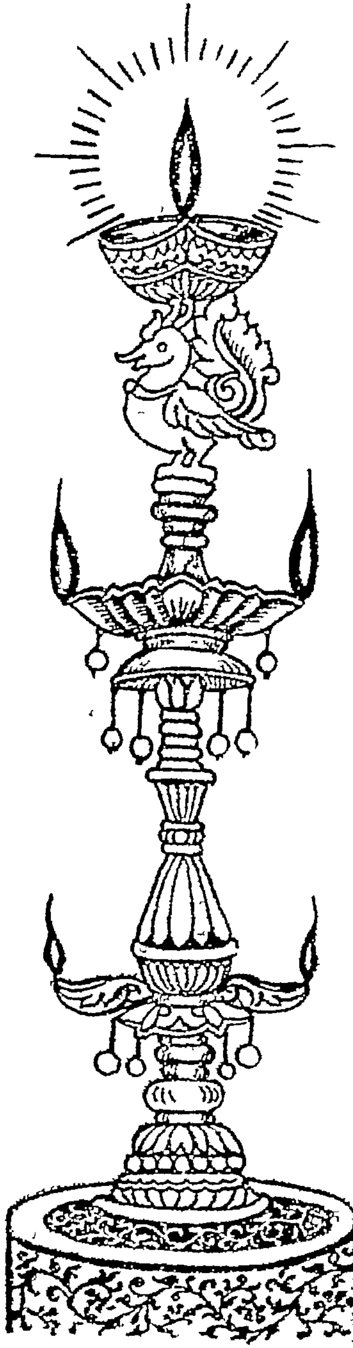

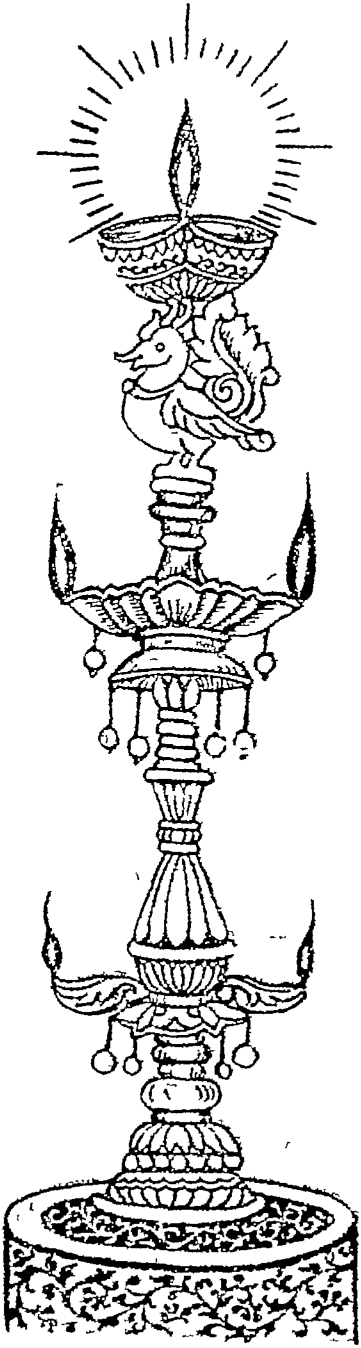

[४१]

तुम मुझसे जो चाहते हो, वही मै देना चाहता हूँ · अपना आपस का प्रेम बढेगा। तुम मुझ से जो चाहते हो, मै देना नही चाहता हूँ···· ·तुम्हारे प्रेम की कसौटी होगी। तुम मुझसे जो नही चाहते हो, मै वही देना चाहता हूँ ! यहाँ सघर्ष शुरू होता है। तुम मुझसे कुछ लेना-देना नही चाहते और मै भी। बस ! अपना प्रेम मिट जाता है ! अत. लेते भी रहो और देते भी रहो ! उसमे विवेक दोनो पक्ष मे आवश्यक है।

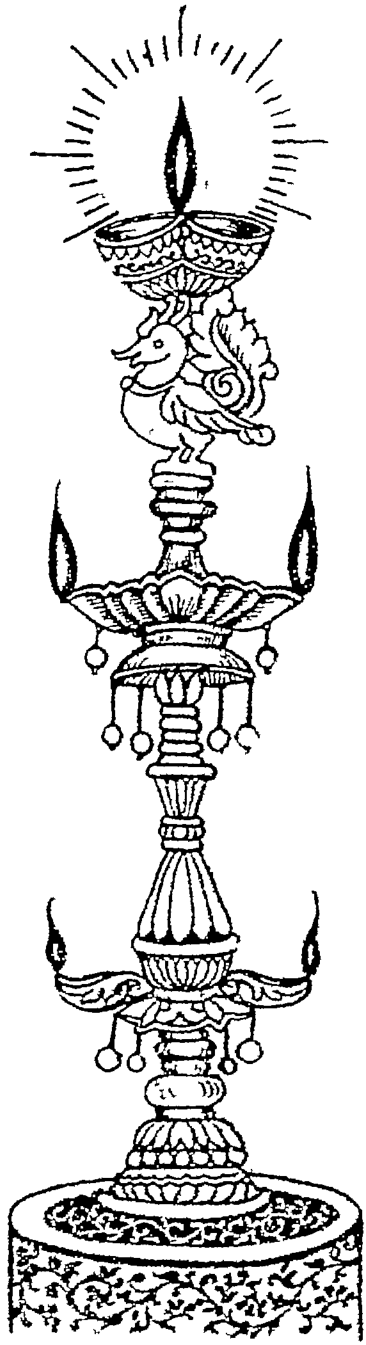

[४२]

दूसरो को सुधारना है ? मात्र उपदेश से यह काम नही होगा। जिसको सुधारना है, उसकी आप के प्रति स्नेहयुक्त श्रद्धा है ? फिर ज्यादा उपदेश की आवश्यकता नही है। आपके इशारे से ही वह सत्पथगामी बनेगा।

[४३]

ज्ञानी ज्ञानदृष्टि से जो कदम उठाता है, उसका भक्त मात्र-श्रद्धा से अनुसरण करता है …… उसको ज्ञानदृष्टि की आवश्यकता नही है।

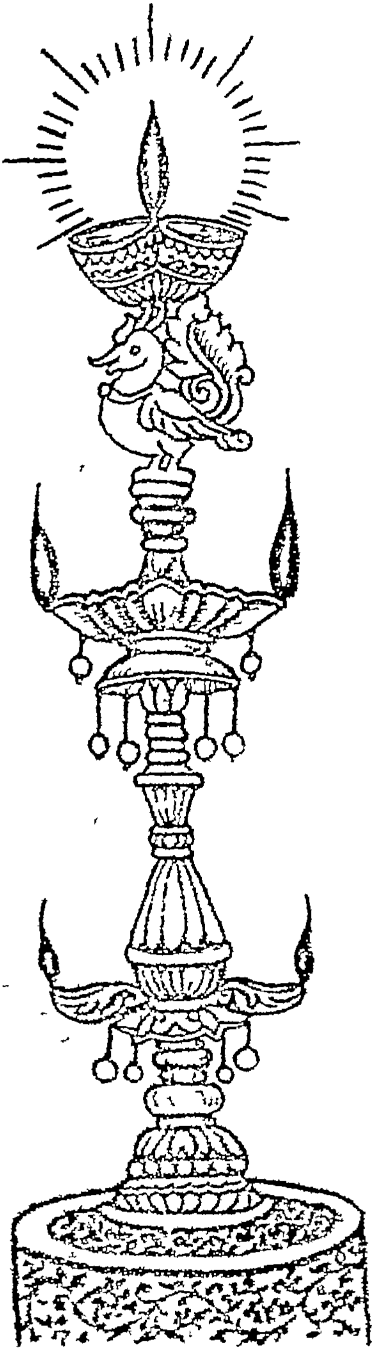

[१४]

भले ही हम बड़े ज्ञानी न बन सके, परन्तु बड़े ज्ञानी को पहिचान सकें और उसके प्रति प्रीतिपूर्ण श्रद्धा वाले भी बन सकें, तो हमारा कल्याण निश्चित है। श्रद्धा माने श्रद्धा 'वहाँ शंका-कुशंका नही होना चाहिए। जहाँ शंका वहाँ श्रद्धा नही! ज्ञानी पुरुष की हमारी कल्पना इतनी ही होना चाहिए कि हम उसके प्रति आदरयुक्त बने रहे। ज्ञानी का अर्थ यदि 'सर्वगुणसम्पन्न' करेंगे तो वर्तमान विश्व मे कोई ऐसा ज्ञानी मिलेगा ?

[४५]

एक वालक तीसरी कक्षा मे पढता था । एक दिन उसने अपनी माँ से कहा–"माँ मेरे मास्टर सा तो मात्र मेट्रिक तक पढे हुए हैं, मै उनके पास नही पढूगा !" माँ समझदार थी, उसने कहा—

"वेटा, तू उनके पास मेट्रिक तक तो पढ़ सकता है ··फिर आगे नये मास्टर सा. खोजेगे !"

दूसरे का विकास देखने के साथ-साथ हम कहाँ है, यह तो सोचे ।

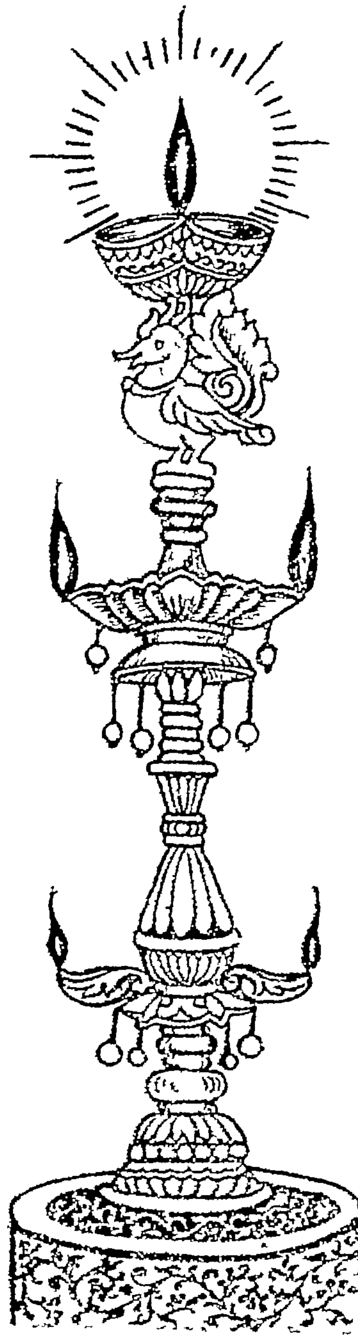

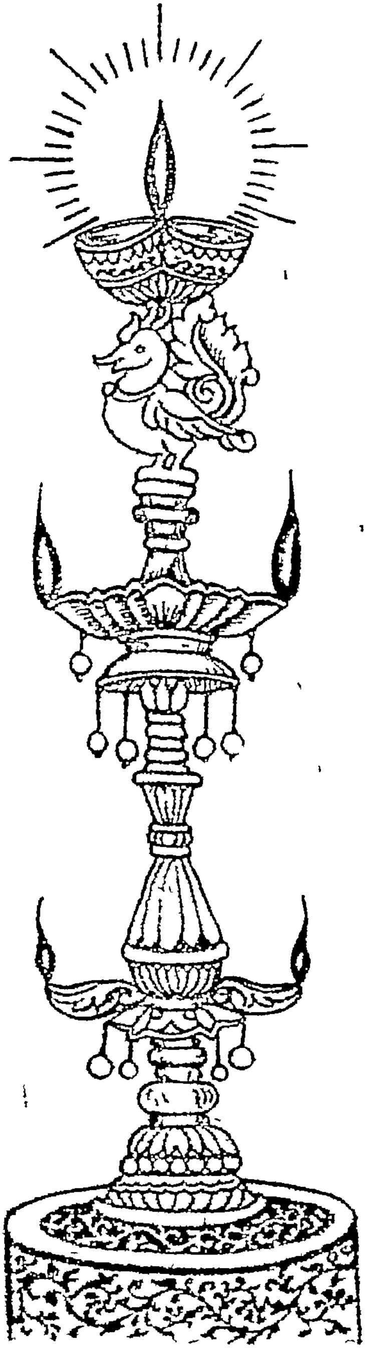

[४६]

आन्तरिक विकास किसी भी अवस्था मे हो सकता है। हम जिस अवस्था मे हैं, उसी मे से सोचे कि "मेरी आत्मदशा वर्तमान मे कैसी है ? राग और द्वेष से मै कैसे छुटकारा पाऊँ ? बाह्यविकास पुण्याधीन माना जाता है, परन्तु आन्तरिक विकास पुन्याधीन मात्र नही है। आन्तरिक विकास के लिए आवश्यक पुण्योदय हमे मिल गया है। आन्तरिक विकास का प्रारभ आज से ही कर सकते हैं। करना है ?

[४७]

सिद्धि के लिए शक्ति चाहिये।

शक्ति श्रद्धा से प्राप्त होती है। परमात्मा के प्रति परम श्रद्धा से शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। शक्ति की उपलब्धि से जीवन मुक्ति प्राप्त करता है। अनन्त शक्तिमय परमात्मा की शरण मे ही मानव जीवन को शान्ति है। शरण भाव से विकास की आवश्यकता है। आन्तरिक भावो मे शरणवृत्ति का सम्मिश्रण हो। मेरी यह कामना है कि परमात्मकृपा से मैं शक्ति-सम्पन्न बनूँ।

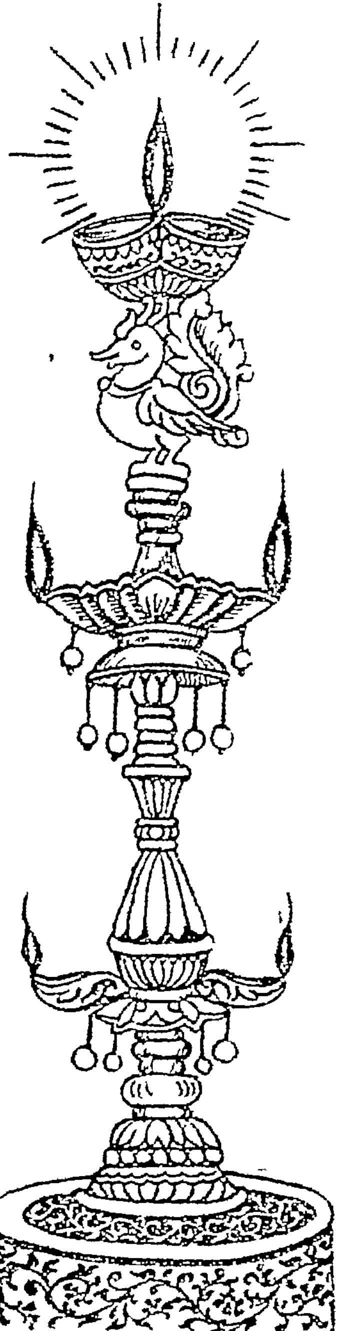

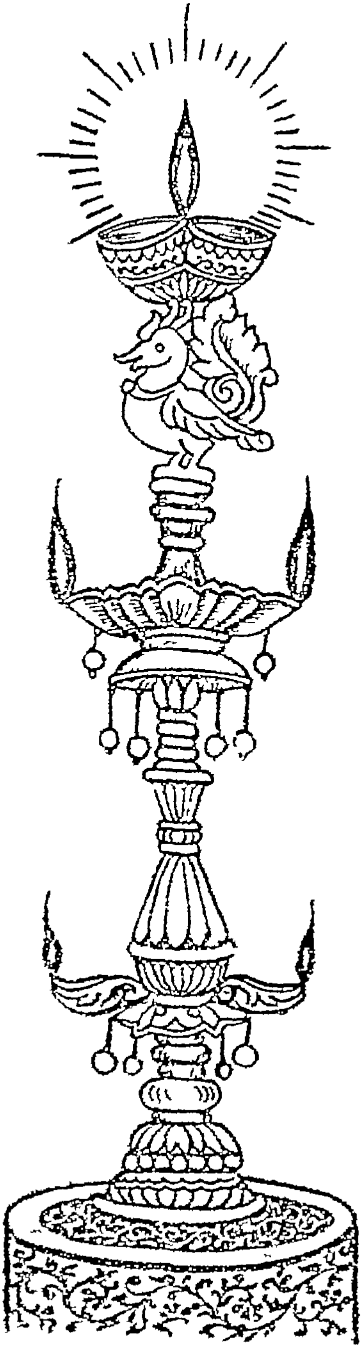

[४८]

अन्तर्मुख जीवन के प्रति प्रीति होती जा रही है। श्रमण जीवन मे श्रमणत्व का आनन्द अन्तर्मुखता से प्राप्त हो सकता है, ऐसा निर्णय हो रहा है। बाह्य धर्मप्रवृत्ति, धर्म प्रसार की प्रवृत्ति से भी निवृत्त होना श्रमण जीवन मे आवश्यक है। स्व-आनन्द के लिये यह सोचता हूँ, परन्तु विश्व मे जब साधुता पर घोर आक्रमण होते हुए देखता हूँ, तब धर्मरक्षा के लिये बलिदान की भावना जाग्रत हो उठती है।

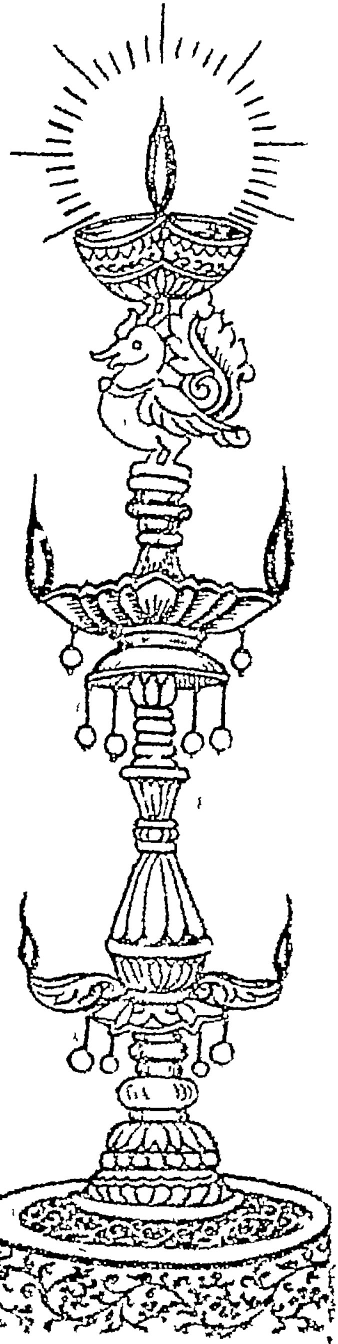

[४९]

यश-कीर्ति एव प्रसिद्धि की कामना से मुक्त होना आवश्यक है, अन्यथा मन.शान्ति दुर्लभ है। प्रसिद्धि की स्पर्धा मे अनेक नुकसान भी है, उन्हे देखना चाहिये। सिद्धि ' 'आत्मसिद्धि के जीवन मे विश्व-प्रसिद्धि का कार्य उसके अनुरूप नही है। प्रसिद्धि का प्रयोजन अन्य जीवो को धर्मोन्मुख बनाना होता है, परन्तु वहाँ आत्मा की अत्यन्त जाग्रत स्थिति अपेक्षित है।

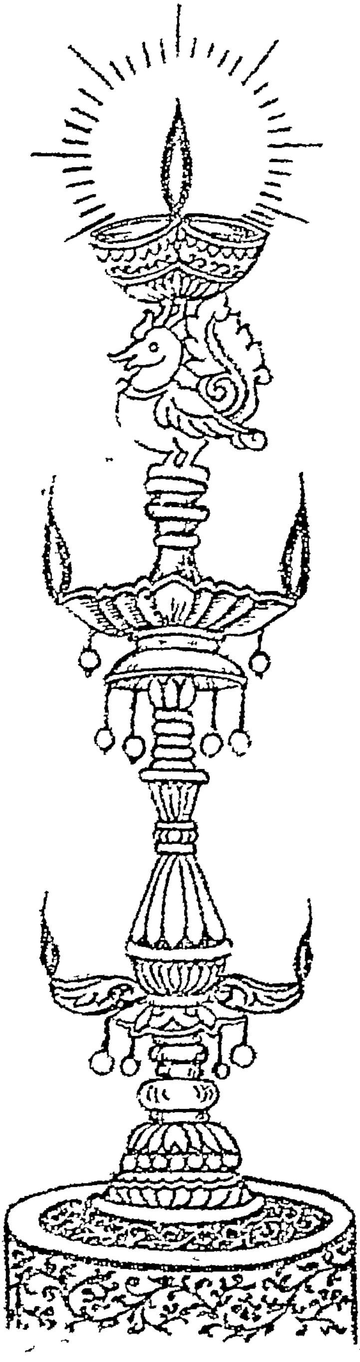

[५०]

जिस व्यक्ति को स्वयं वदलना नही है, उसको तू नही वदल सकता है। व्यक्ति को वदलने का कार्य मात्र उपदेश से नही होगा। व्यक्ति से Personal सम्पर्क स्थापित कर, उसके संयोग परिस्थिति का अध्ययन कर मार्ग-दर्शन देना होगा। तभी व्यक्ति वदल सकता है। हर व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ होती है ..... उन इच्छाओ को मोडने का कार्य सरल नही है।

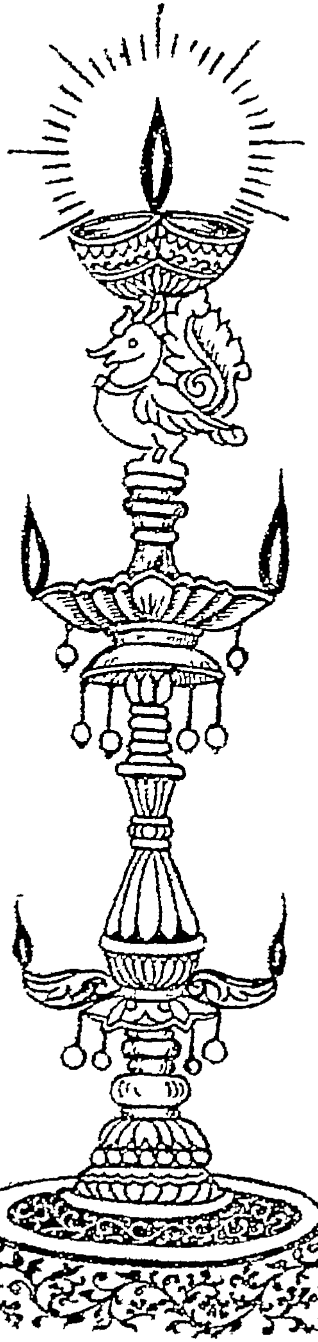

[५१]

तीर्थभूमि तपोभूमि वन जाय, साधना-भूमि बन जाय तो मनुष्य को मन शान्ति और आत्मकल्याण प्राप्त हो सकता है। परमात्मा का दर्शन व पूजन साधना की दृष्टि से होना चाहिये। उसमे अनुशासन चाहिये । शान्ति के लिए इधर-उधर भटकने वालो को ऐसे तीर्थ मिल जाय तो ? तीर्थ है, परन्तु तीर्थों का रूप वदलता जा रहा है। मूल स्वरूप आवृत्त हो रहा है ।

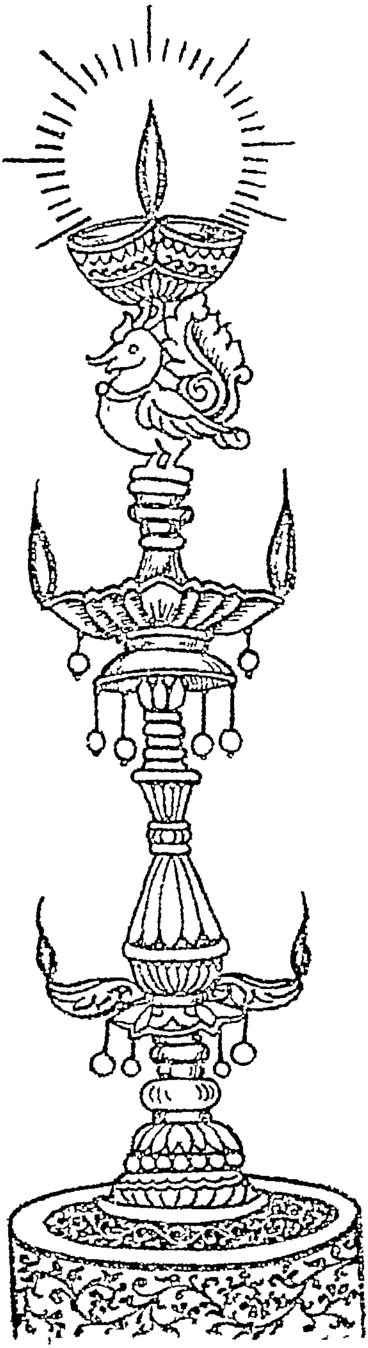

[५२]

"अच्छा आदमी नही मिलता है,' यह शिकायत सर्वत्र सुनाई देती है, परन्तु शिकायत करने वाला स्वय अच्छा आदमी वनने की चेष्टा करता है क्या ? बुरे आदमियो को अच्छे आदमियो से अपने स्वार्थ पूर्ण करना है । धर्म-हीन, गुणहीन श्रीमन्त और सत्ता-धारी लोग अच्छे आदमियो की बलि दे रहे है। इसीलिये राष्ट्रीय, सामाजिक और पारिवारिक जीवन-मन्दिर ध्वस्त हो रहे है।

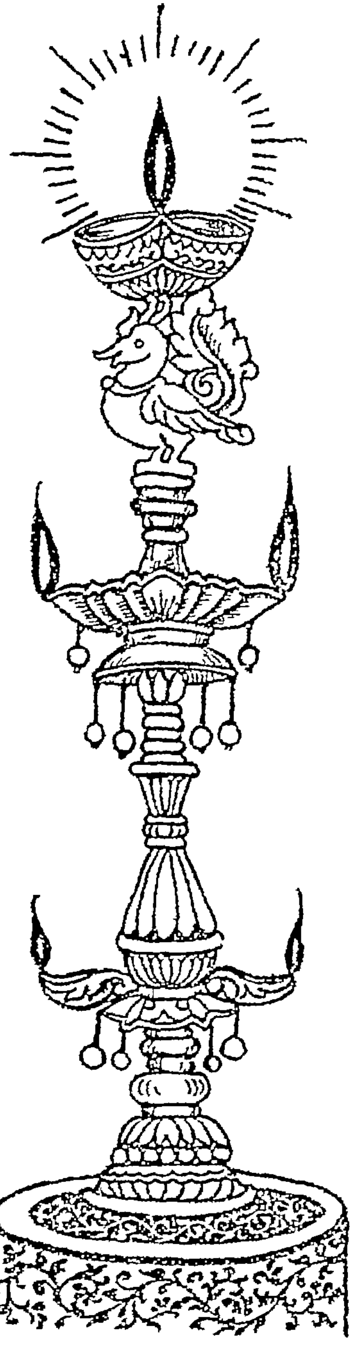

[५३]

साधना के पथपर चलने वालो को, जव विपाद-ग्रस्त देखता हूँ और मै उनको विपाद-मुक्त करने मे अपने आपको असमर्थ पाता हूँ, तव मै स्वय विपाद-ग्रस्त वन जाता हूँ। मेरे प्रिय साधक की भी अशान्ति मै नही मिटा सकता, अपनी इस विवशता पर मुझे रोष आता है। जिस व्यक्ति ने ससार के सर्व संवधो का विच्छेद किया, उस व्यक्ति को भी वन्धन ! भयकर वन्धन !!

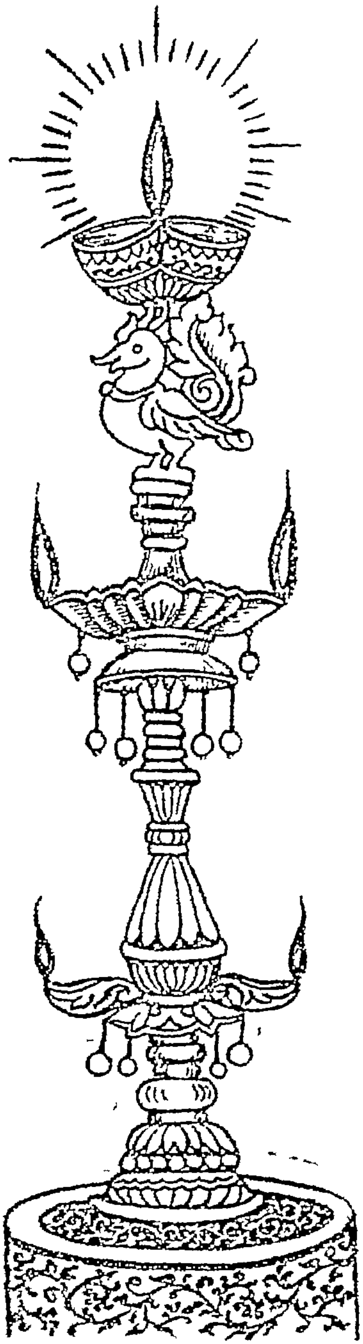

[५४]

अच्छी मनमोहक बाते करने वालो का जीवन व्यवहार जब कलुषित दिखाई देता है, तब दर्शक के मन मे न केवल उनके प्रति अरुचि होती है, अपितु अच्छी बातो के प्रति भी घृणा पैदा हो जाती है ।

[५५]

देखो, आपका मन कही परिग्रह के भार से दब तो नही गया ? भारी मन ही परिग्रह है। मन भार हीन बनादो। मन को मुक्त करो। अह और मम के भार से मन को मुक्त करो ।

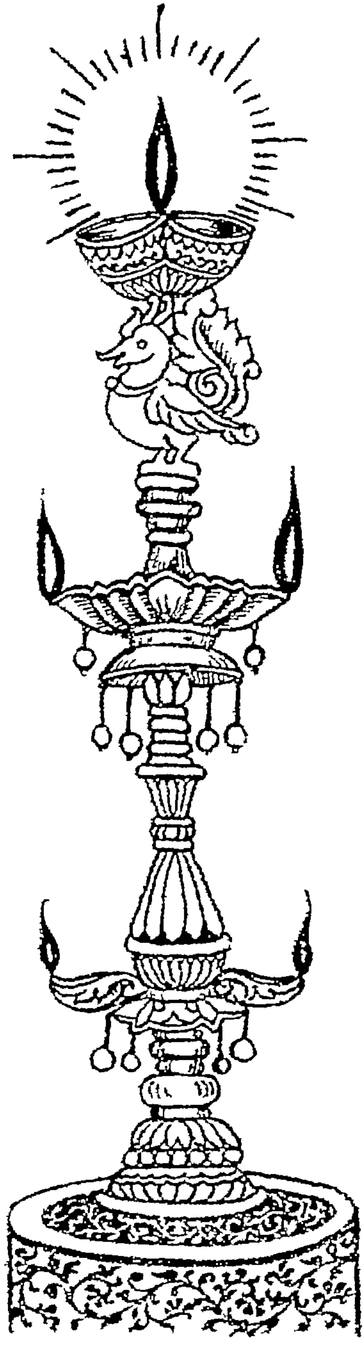

] ५६]

सुख की खोज वन्द करो। दुःखो से मित्रता करना सीखो। सुख की अपेक्षा शान्ति का मूल्य ज्यादा करो। दु.ख से शान्ति की ओर जाने की प्रेरणा मिलती है। दु ख और दुःखी को दिव्य-दृष्टि से देखो। तुम्हारी अन्तश्चेतना जाग्रत होगी। परमात्मा से सुख नही शान्ति की याचना करो। सुख मे शान्ति नही है, दु ख मे शान्ति की खोज सफल वनती है।

सुख के लिए मारे-मारे न फिरो। शान्ति के लिए सोचो।

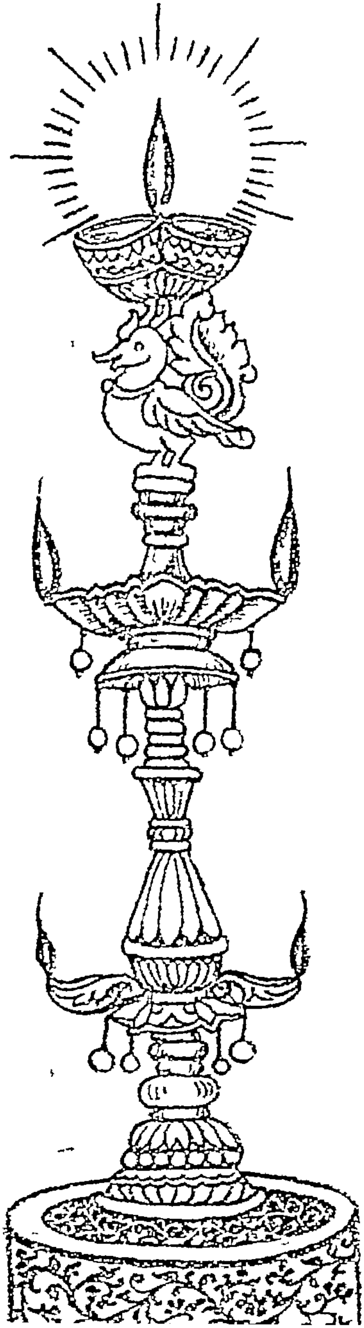

[५७]

मन को स्वस्थ बनाना आवश्यक है। इसके लिए धर्म-ध्यान होना चाहिये। धर्म ध्यान से मन.स्वा-स्थ्य प्राप्त होता है। धर्मध्यान से ही कषाय मन्दता आती है और परमात्मपद की ओर गति होती है। रुको मत, धर्मध्यान के लिए तत्पर बनो। सब प्रश्नो का हल धर्मध्यान मे मिलेगा। सब अशा-न्ति धर्मध्यान से मिट जायगी। प्रतिक्षण धर्मध्यान हो सकता है।

[५८]

क्या-तू सुविधाओ का सुख चाहता है ? ये ही दुख है। सुविधाओ मे सुख की कल्पना, भ्रम है। मानव तू सोच-विचार 'सुविधाओ के सुख मे पूर्ण-विराम कहाँ है ?

इच्छाओ की सफलता का सुख क्या तू चाहता है ? इच्छाओ का अन्त कहाँ है ? इच्छाओ से मुक्त होने पर जो सुखानुभव होता है, उसका अनुभव करना आवश्यक है।

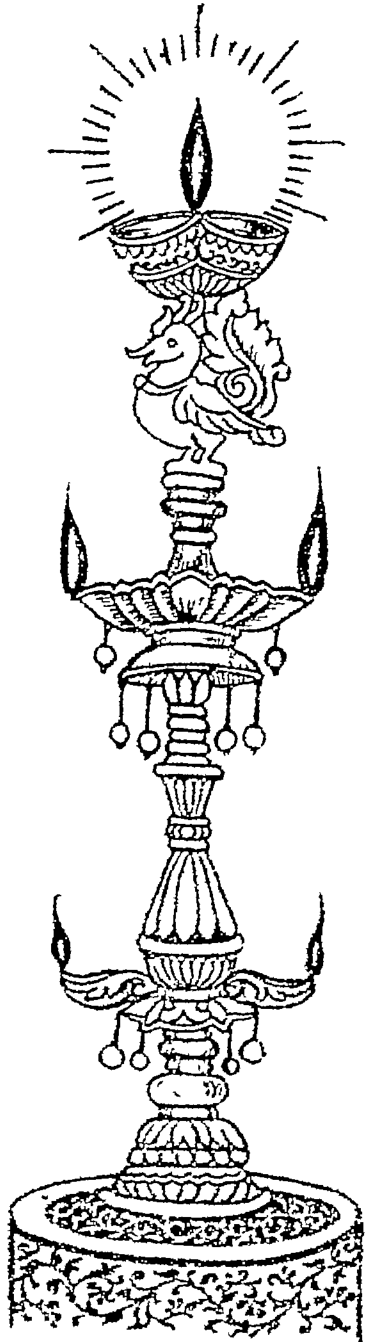

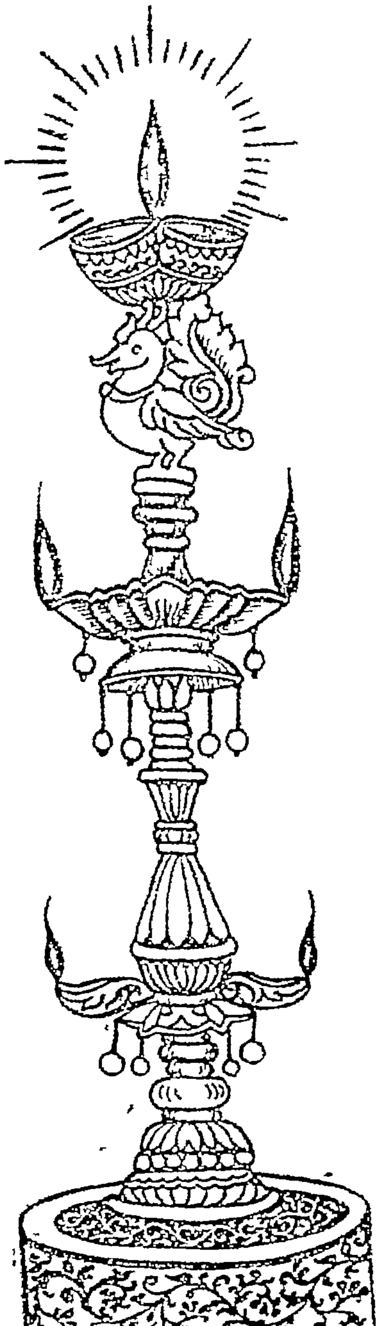

[५६]

आपकी लडकी कुरूप होगी, खोट वाली होगी, तो क्या कोई उससे शादी करना चाहेगा ? वैसे ही धर्मक्रियाएँ यदि सुन्दर नही होगी ·······धर्मक्रिया करने वालों ने उनका सौन्दर्य नष्ट कर दिया होगा, तो क्या दूसरे उन क्रियाओं से प्रेम करेंगे ? जीवन मे उन्हे अपनायेंगे ? क्रिया मे सौन्दर्य चाहिए, मनुष्य को उस क्रिया मे क्षणिक तृप्ति भी चाहिये···· ····· अन्यथा कोई क्रिया क्यो करेगा ?

[६०]

क्या परमात्मा के बिना जीवन अधूरा लगता है ? परमात्मकृपा के विना भी जीवन चलता है न ? फिर परमात्मा की भक्ति क्यो ? प्रीति के विना भक्ति नही हो मकती। प्रीति ....प्रियतम के विरह मे व्याकुलता पैदा करती है और प्रियतम के सम्पर्क मे निमग्नता प्रकट करती है । परमात्मा के विरह मे व्याकुलता नही है .. 'तो देर है परमात्मपद की प्राप्ति मे !

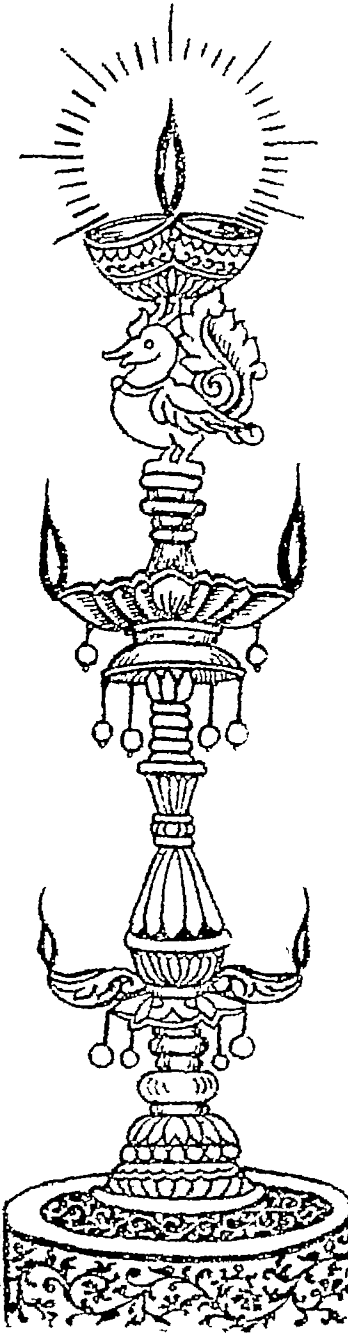

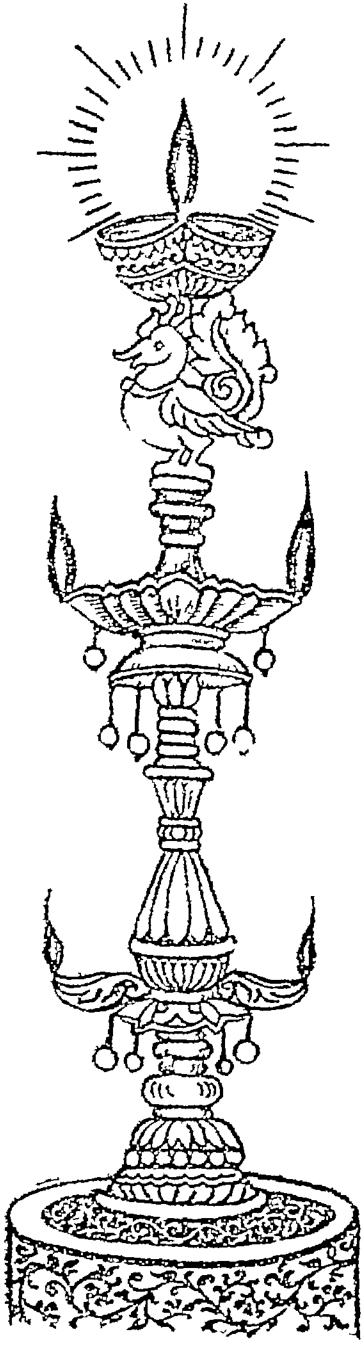

[६१]

मन मे कितने प्रश्न है ? कितनी समस्याएँ है ? जब तक इन प्रश्नों का समाधान नही करेंगे स्थिरता दूर है। मन का समाधान करे .... दबाव मत डालें। दमन के बजाय शमन हितकारी है।

[६२]

डरो मत, देखो और करो। डरने से क्या ? ससार के द्रष्टा बनने मे ही शान्ति है । राग-द्वेष से मुक्त दर्शन ही शान्ति है ।

[६३]

चिन्तन करना है तो ज्ञान चाहिये। विचारो से मुक्त होना है तो इच्छाओ से मुक्ति चाहिये। जिनमे ज्ञान भी न हो और जो इच्छाओ से मुक्त भी न हो, ऐसे व्यक्ति कभी शान्ति प्राप्त नही कर सकते । केवल शान्ति ... शान्ति की रट लगाने से शान्ति नही मिलती । शान्ति का सही उपाय करे । ज्ञान के बिना चिन्तन कैसा ? इच्छामुक्ति के बिना निर्विकल्प स्थिति कैसी ?

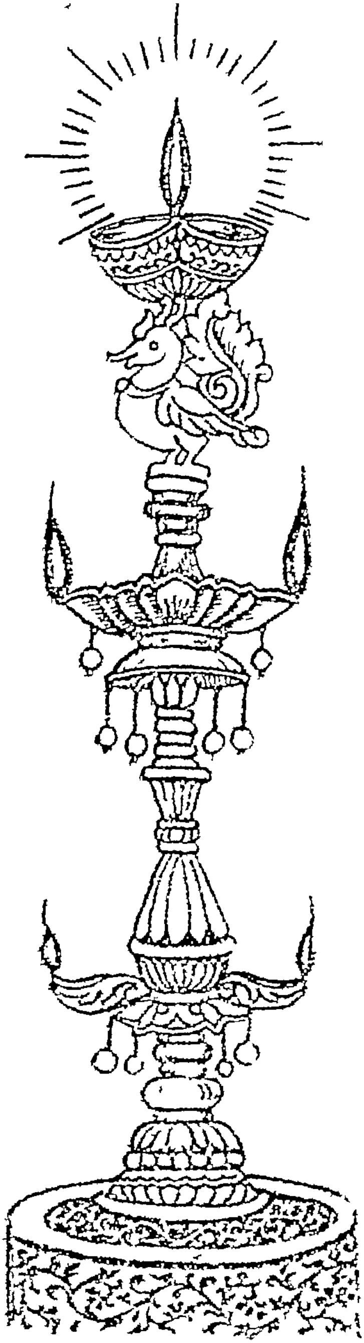

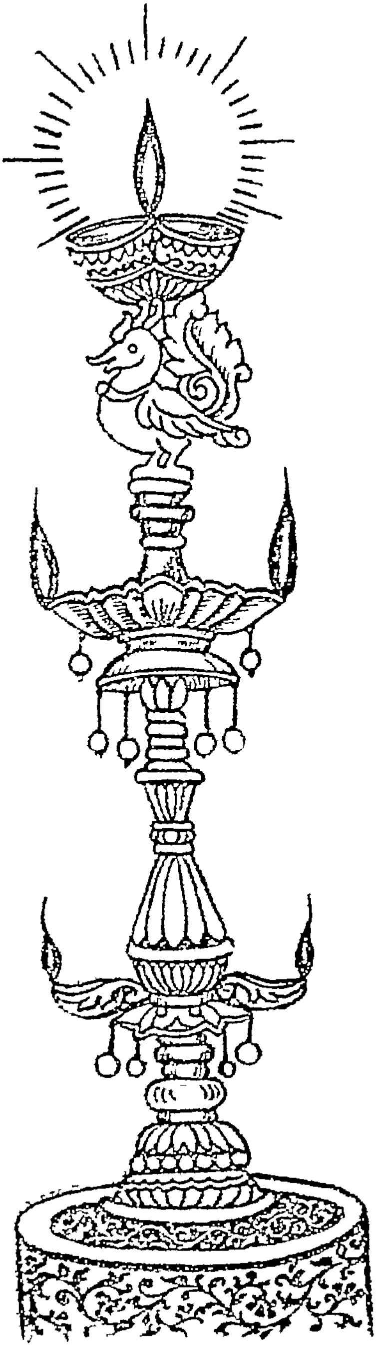

[६४]

अतृप्त इच्छाएँ स्वप्न मे प्रकट होती है। स्वप्न मे तो सच्चा मनुष्य प्रकट होता है! वहाँ दम्भ नही चलता। स्वप्नावस्था के अध्ययन से "मै वास्तव मे कैसा हूँ", इसका पता लग जाता है। कभी-कभी मनुष्य का भावी भी स्वप्न मे साकार हो जाता है।

जो कुछ बुरा है, उसको प्राप्त करने की इच्छा को तीव्र मत बनाओ। धीरे-धीरे उन इच्छाओ का शमन करो।

[६५]

जितने प्रश्न है, उतने समाधान है। शास्त्र क्या है? प्रश्नो का समाधान ही तो। समाधान ऐसे हो कि नये प्रश्न पैदा ही न हो, तब समता आती है। जब तक प्रश्न है, तब तक समता नहीं है। श्रद्धावान् जीव दूसरो के द्वारा दिये गये समाधान से तृप्त होता है, बुद्धिमान् जीव स्वयं समाधान ढूढता है। यदि वह शास्त्रो व ग्रन्थो के अध्ययन से समाधान ढूढता है, तो महान् चिन्तक वन जाता है।

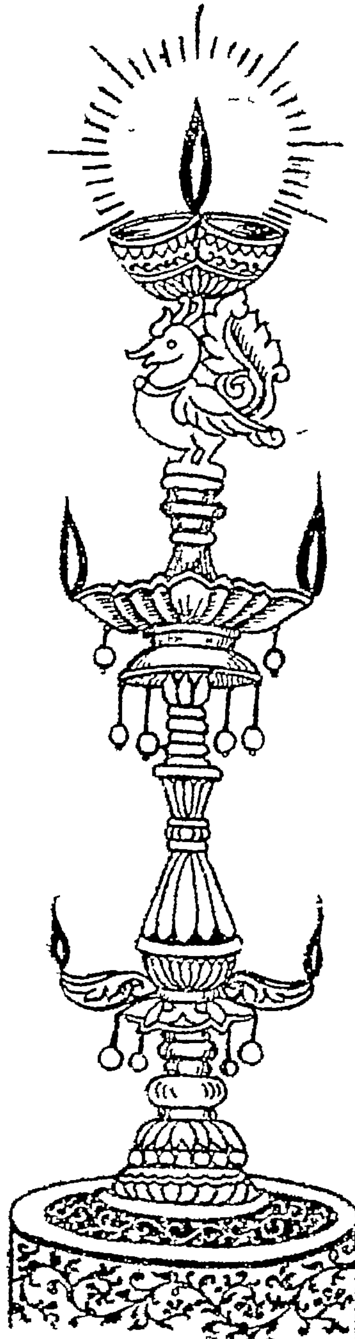

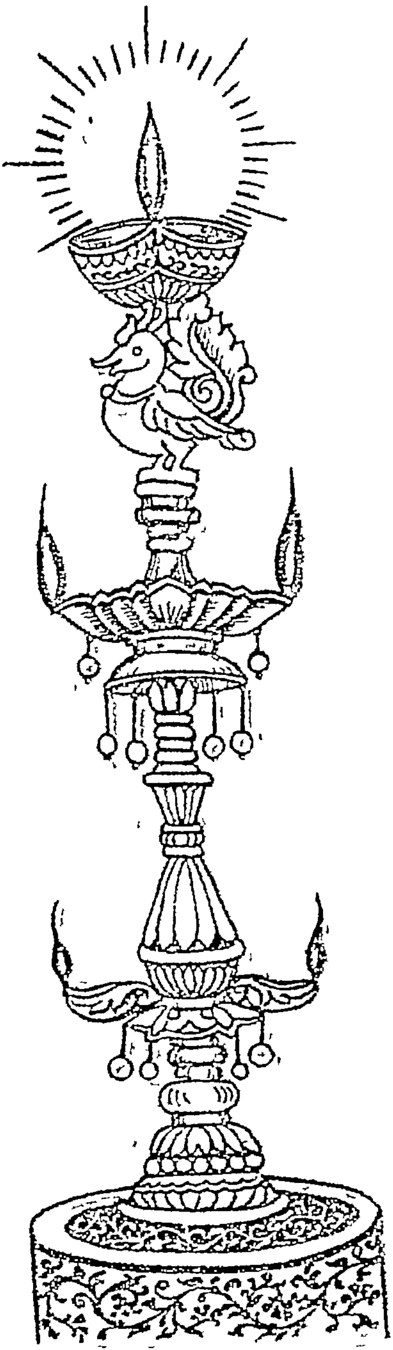

[६६]

देखा, परन्तु सोचा नही । चखा, परन्तु अनुभव नही किया । पुरुषार्थ किया, परन्तु पाया कुछ नही । फिर जीवन का क्या अर्थ ?

मित्र, क्या बताऊँ ? लोग सोचते ही नही, अनुभव करते ही नही.........फिर क्या पायें । कहते हैं–"हमने कुछ पाया नही ।" कैसे पायें ? सुख-दुख के चक्र से बाहर निकलें तब न। सुख-दुःख के चक्र मे सही चिन्तन को स्थान कहाँ ?

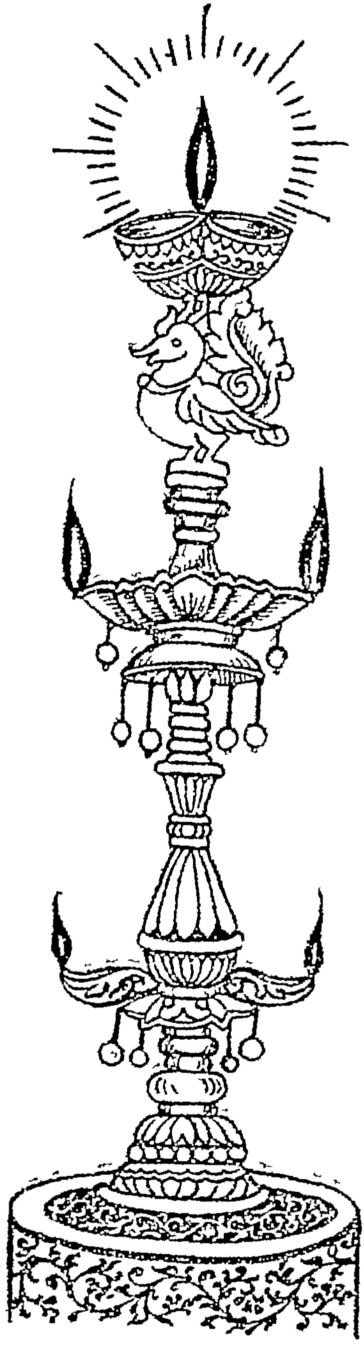

[६७]

एक राजा अपने द्वार पर आये प्रथम भिक्षुक की इच्छा पूर्ण करता था। एक दिन एक फकीर आया। उसने अपने पात्र को सोना मोहरो से भर देने की इच्छा बताई। राजा भरने लगा, परन्तु पात्र भरता ही नही था! राजा ने अपनी सारी सम्पत्ति पात्र में डाल दी·····पात्र नही भरा। राजा ने पूछा–'यह पात्र कैसा अजीब है·····!! यह किस चीज का बना हुआ है ?" फकीर ने कहा–"मनुष्य के हृदय से यह पात्र बना है·····!!

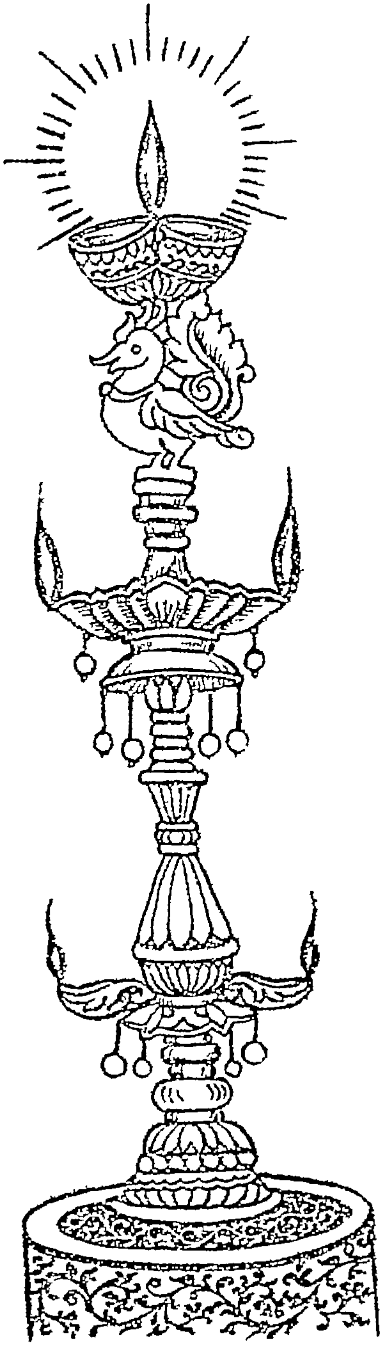

[६८]

मधुर शब्द सन्तप्त मन को शान्ति देता है अथवा अशान्ति मे कमी करता है; फिर मधुर शब्द की हमे अपेक्षा नही रखनी चाहिये। जहाँ तक बने, मधुर शब्द दूसरो को दो ·····स्वय दूसरो से अपेक्षा न करो।

[६९]

निर्भय बनो। निर्भयता ही आत्मोत्थान की Master Key है। जहाँ तक 'मैं और मेरा' है, वहाँ तक ही भय है।

[७०]

तारक……उद्धारक तत्त्व तो विश्व मे सदैव व सर्वत्र विद्यमान है। हमे उस तत्त्व के प्रति अभि-मुख होना है। अभिमुख होना माने पात्र होना। परमात्मतत्त्व तो जैसा चौथे आरे मे था, वैसा ही आज है। हम उसका सहारा लें और भव सागर तैरने लग जयाँ।

परिवर्तनशील ससार मे ज्यादा समय बिताना उचित नही। परमात्मा का सान्निध्य शीघ्र प्राप्त कर निर्भय बने।

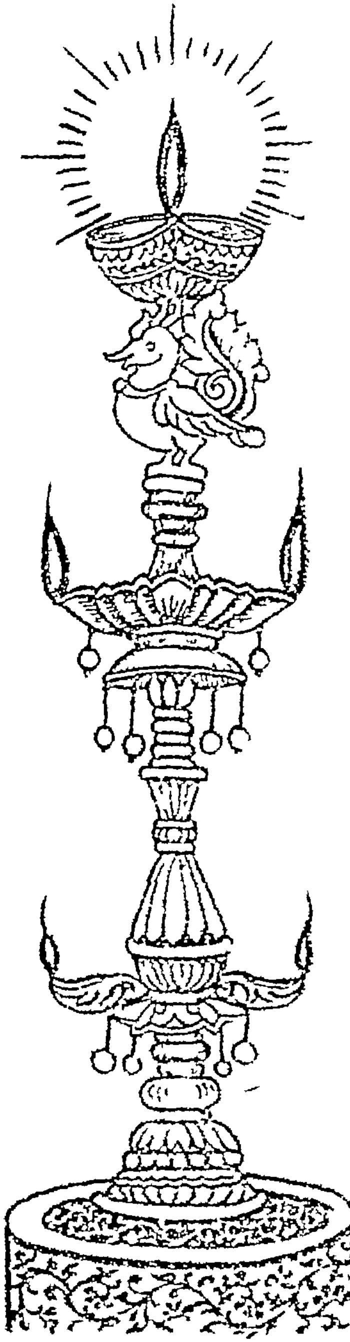

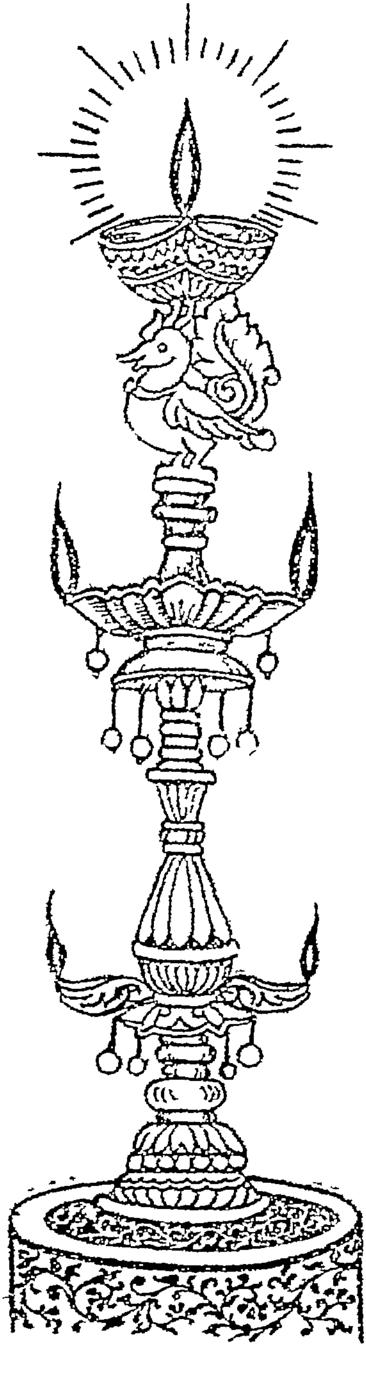

[७१]

प्रीति के विना श्रद्धा कैसी ? भक्ति के विना विश्वास कैसा ? श्रद्धा मे स्नेह के मिश्रण के विना सम्बन्ध नही जुड सकता। परमात्मा मे क्या हमारी स्नेहमिश्रित श्रद्धा है ? परमात्मा के प्रति स्नेहयुक्तश्रद्धा से हमारा हृदय भरपूर है ? परमात्मतत्त्व को केवल बुद्धि से समझने की बात छोड दो। बुद्धि से ·· बुद्धि के बन्धनो से मुक्त होकर परमात्मा के प्रति स्नेहयुक्त बनो। स्नेह से ही सम्बन्ध बधता है।

[७२]

श्रद्धा है, स्नेह नही है। स्नेह-हीन श्रद्धा भिखारिन है............ माँगती फिरती है। प्रीतियुक्त श्रद्धा सदैव समर्पण कराती है। परमात्मा के प्रति प्रीतिपूर्ण श्रद्धा होजाने पर समर्पण करना नही पडता, स्वतः हो जाता है।

ससार के लाखो दुःखो मे भी यदि हमारे पास स्नेहाधार परमात्मा है, तो हम दुःखी नही हो सकते। स्नेही की निकटता में दुःख ?

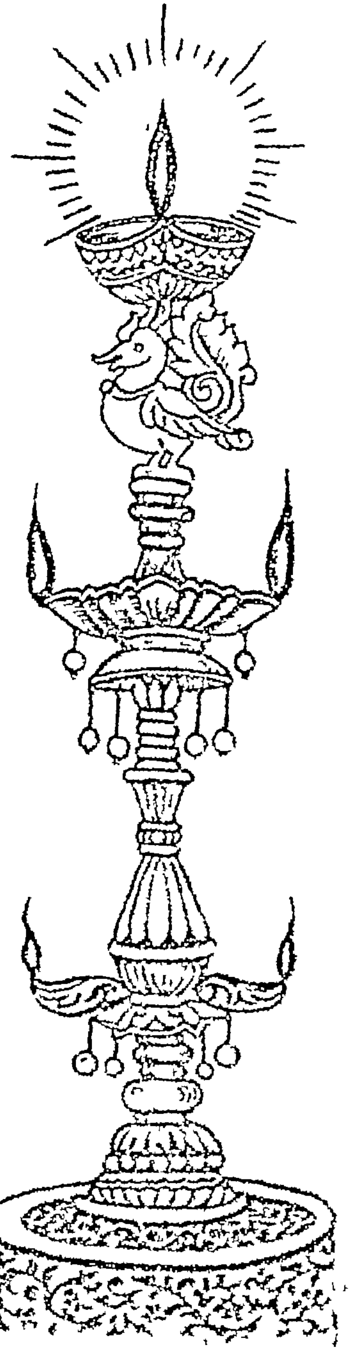

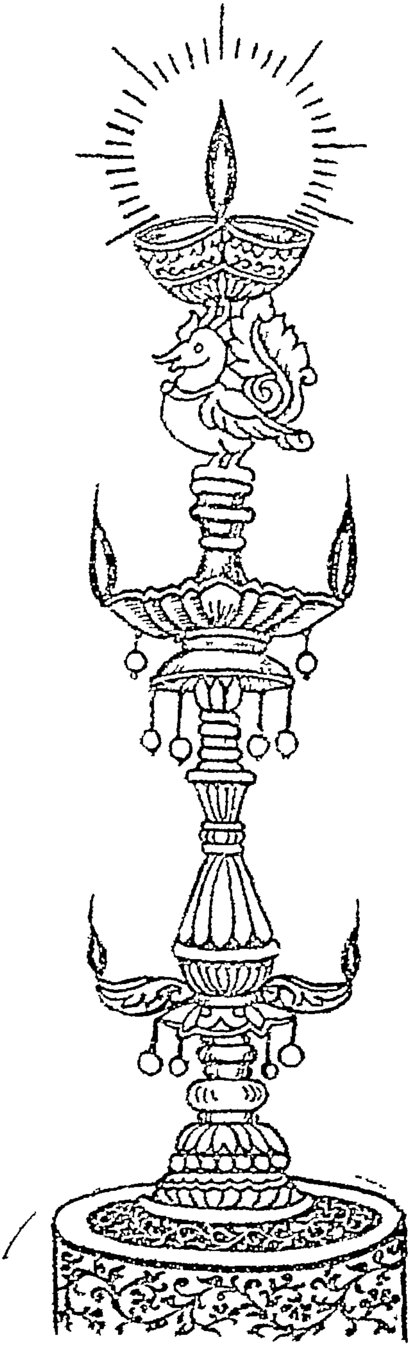

[७३]

धर्म करने वाले………।अर्थात् धर्मक्रिया करने वाले धर्मध्यान ही नही जानते । धर्मध्यान के विना धर्मक्रिया कैसी ? परमात्म-पूजन करने वाले परमात्मस्वरूप का चिन्तन नही करते … फिर पूजन कैसा ? ध्याता ध्यान के विना ध्येय मे लीन नही बन सकता है। ध्येयलीनता के बिना ध्येय प्राप्ति कैसे हो सकती है ? धर्मध्यान मे मन को लगाना ही चाहिये ।

[७४]

मोक्ष मुख का अभिलाषी प्रशम सुख का अभिलाषी नही ? कैसी वात है, यह !! प्रशम सुख की अभिलाषा वाला ही मोक्ष सुख पा सकता है, यह सत्य क्या मोक्षार्थी नही जानता होगा ? फिर प्रशम सुख पाने का प्रयत्न क्यो नही करे ? उसका जीवन ही वह प्रशम मुख के अनुकूल क्यो न जीये ? प्रशम सुख का अनुभव ही मोक्षमुख पाने के लिये वाध्य करता है।

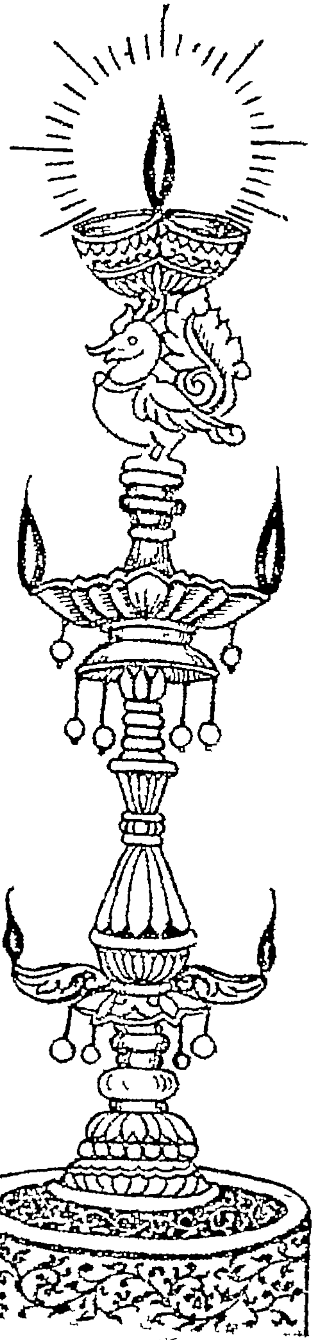

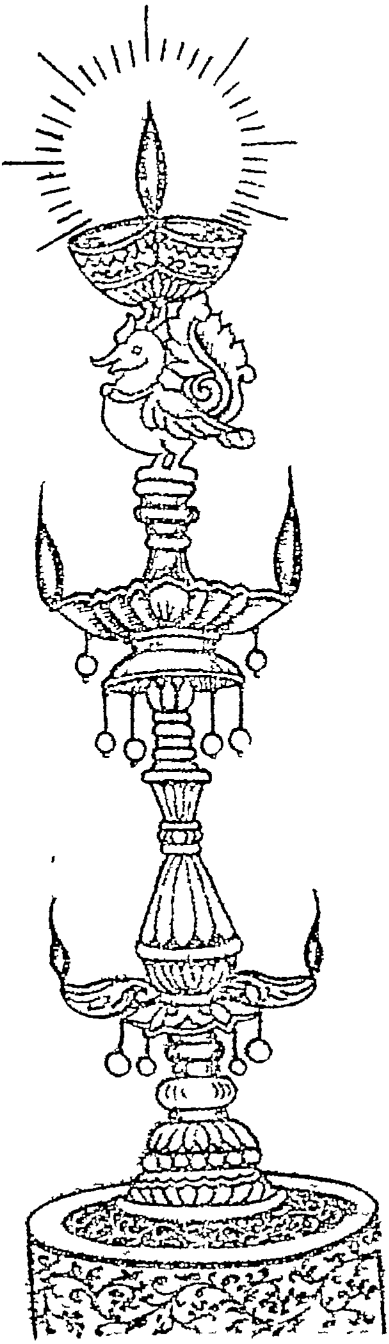

[७५]

सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जीवनस्पर्शी आराधना कैसे हो ? ज्ञान का सम्बन्ध दृष्टि से, दर्शन (श्रद्धा) का हृदय से और चारित्र का सम्बन्ध नाभि से स्थापित करे।

[७६]

दृष्टि ज्ञानमय बन जाय और नाभि सयमपूत बन जाय ... ... मोक्ष दूर नही है।

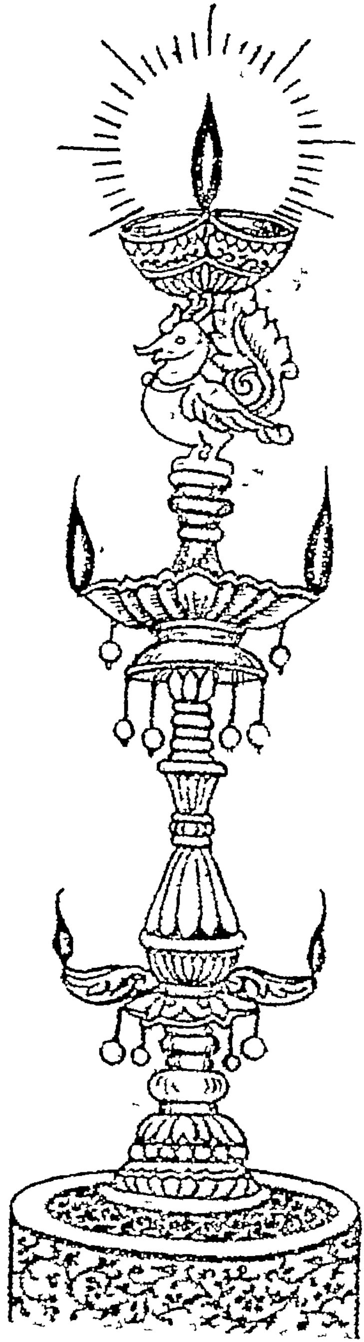

[७७]

कर्तव्यनिष्ठा अतिमहत्वपूर्ण तत्त्व है। जब मनुष्य अपने कर्तव्य को भूल जाता है, औचित्यभग करता है, तो अप्रिय बनता जाता है। मनुष्य की प्रियता औचित्य पालन से सम्बन्धित है। सर्वत्र अपने औचित्य का खयाल करें।

अपने औचित्य पालन के प्रति जाग्रत रहें और दूसरो के औचित्य भग की उपेक्षा करें।

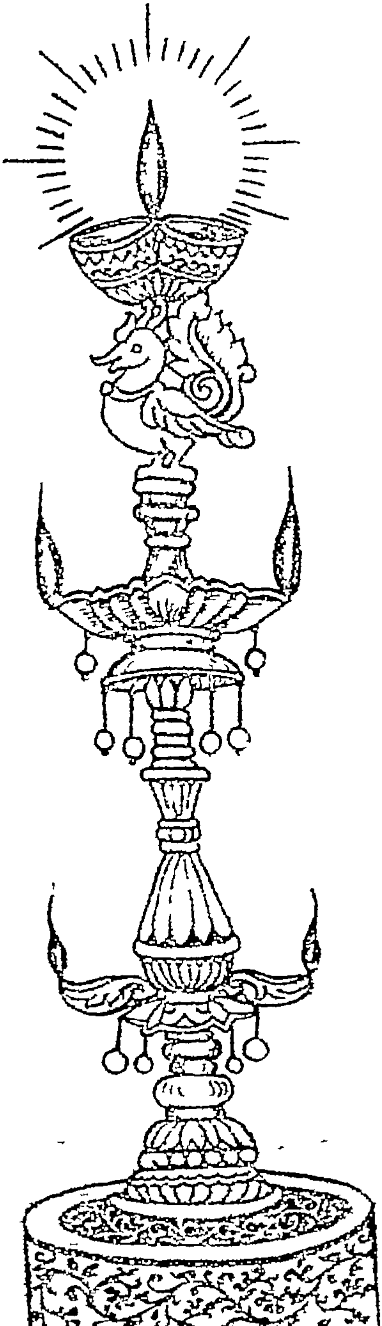

[७८]

जब किसी व्यक्ति की मृत्यु के समाचार मिलते हैं, तब विचार आता है 'बस, वह चला गया ? ५०-६० वर्ष का जीवन '' 'इस छोटे से जीवन के लिए उसने कितना जाल फैलाया ? कितना परिश्रम किया ? वह तो चला गया.... ..पीछे सब पडा रहा ' जीवनमोह ....जीवन सजाने का मोह ही तो जीव को भ्रमित करता है। रोज हजारो जीवन समाप्त होते है.... ..हजारो जन्म लेते है । कैमा अजीब है, संसार का यह चक्र !!

[७९]

जन्म·······जीवन और मृत्यु ·· यह सृष्टि का क्रम है। उत्पत्ति, स्थिति और लय ! निरन्तर परिवर्तन ! परिवर्तनशील विश्व मे जो सदैव स्थिर है, उसको तो मै देखता ही नही हूँ और परिवर्तनशील को स्थिर बनाने की फिक्र में परेशान हूँ। जीवन का स्वाभाविक प्रवाह मृत्यु की ओर है, इस सत्य को नही जानता हुआ ·······जीवन को बिता रहा हूँ।

जन्म ही न हो तो ? जन्म का बन्धन ही टूट जाय तो ?

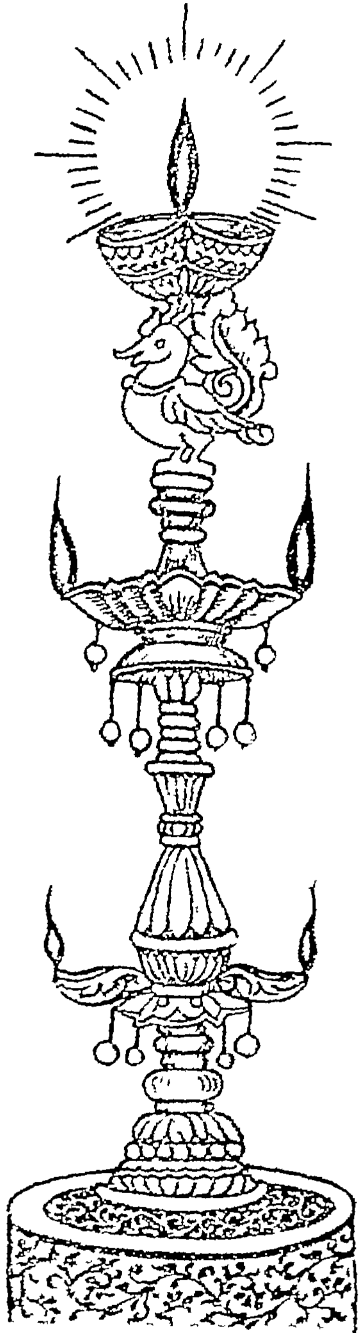

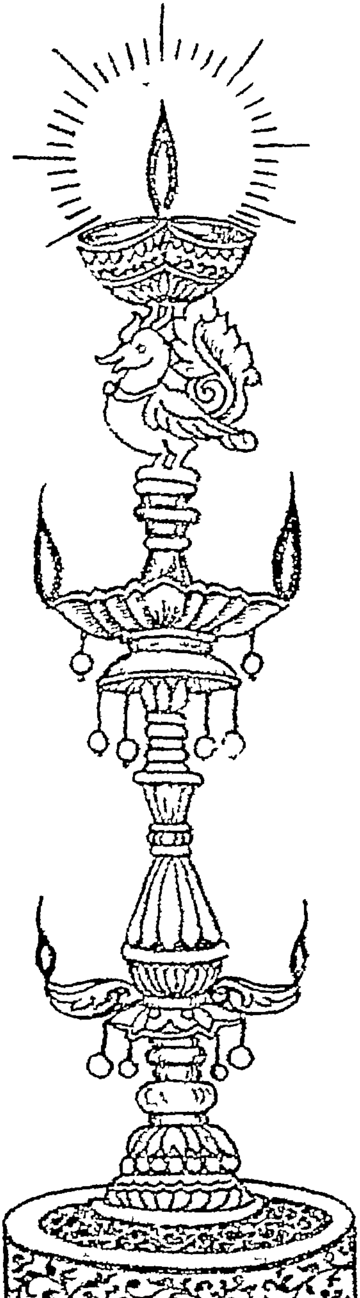

[८०]

सामाजिक जीवन मे ही वन्धन है, नियम है। मामाजिक प्रतिप्ठा का मोह ही वन्धनो मे वद्ध करता है। निर्वन्ध जीवन जीना है तो समाज से मुक्त आध्यात्मिक जीवन जीना चाहिये। सामाजिक सुविधाओ के विना जीवन जीने की शक्ति उपार्जित करना चाहिये। सामाजिक जीवन मे भौतिक सुखो की कुछ प्राप्ति हो सकती है, परन्तु घोर अशान्ति को भी स्वीकार करना पडता है।

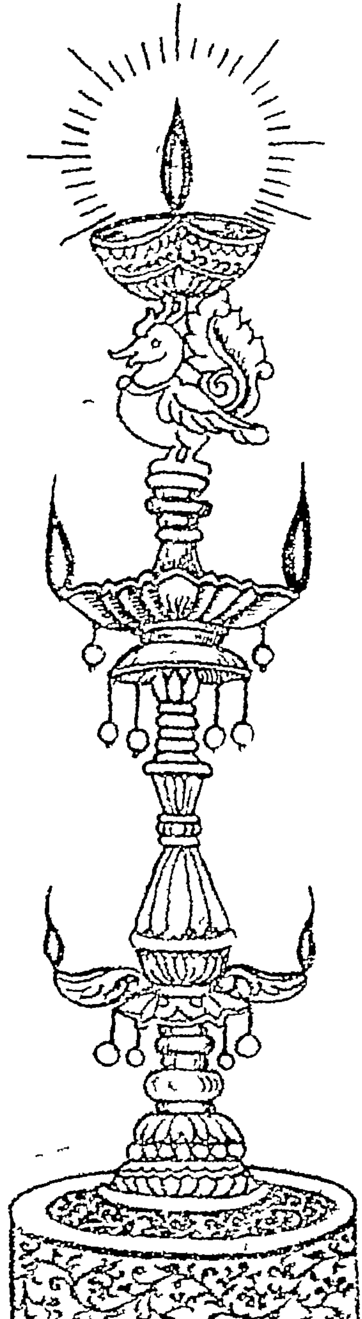

[८१]

सब लोग अपने सुख, अपने आनन्द""अपनी सुविधाओ के लिए तो प्रयत्न करते हैं। तो मै अपनी शान्ति के लिए प्रयत्न क्यो न करूँ? तो मै अपने आत्महित के लिए प्रयत्न क्यो न करूँ? परोपकार और परमार्थ भी क्या है? मनुष्य अपने आनन्द के लिए ही तो परोपकार व परमार्थ करता है। अपने आत्मा से आनन्द पाने वाला दुनिया की दृष्टि में शायद स्वार्थी भी दिखे .... इससे क्या मतलव?

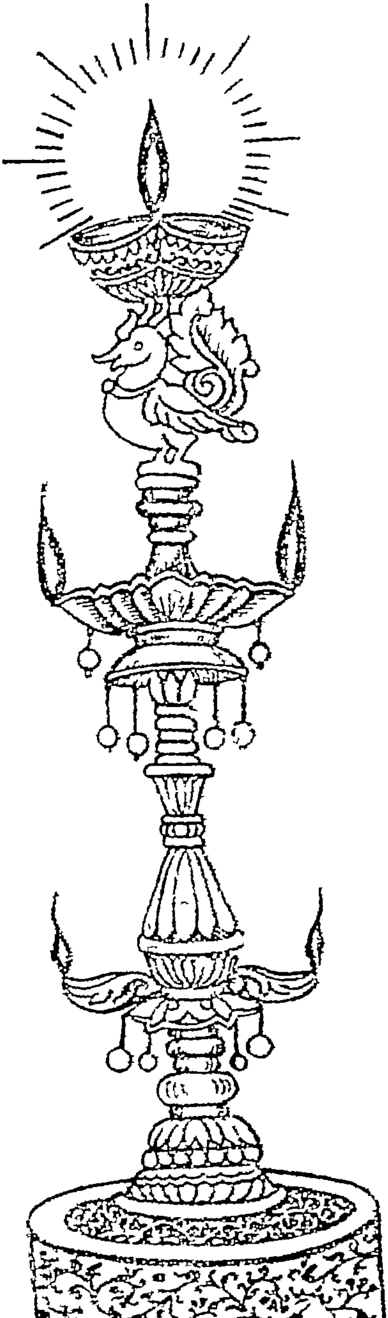

[८२]

अंधे मनुष्य को कहना कि "देखो सूर्य का प्रकाश कितना तेजस्वी है।" अधे के लिए यह बात क्या महत्व रखती है? अंधे को प्रकाश बताने का कोई मत-लब नही अधे को तो दृष्टि दो?

[८३]

जहाँ उपचार की आवश्यकता है, वहाँ उपदेश कुछ भी नही कर सकता। आज उपचार की जगह उपदेश दिया जा रहा है।

[८४)

एक व्यक्ति के तन के , दु.ख को दूसरा व्यक्ति मिटा सकता है मिटाने का प्रयत्न कर सकता है अथवा देख तो सकता ही है, परन्तु मन के दु.ख तो बताये जाय, तब ही मिटाये जा सकते हैं। हम अपने मन के दु ख को दूसरो को बतायें ही नही तो दूसरा क्या कर सकता है। तब स्वय ही मन की अशान्ति का उपाय करें। मन के दु.खो से ही मनुष्य ज्यादा परेशान है।

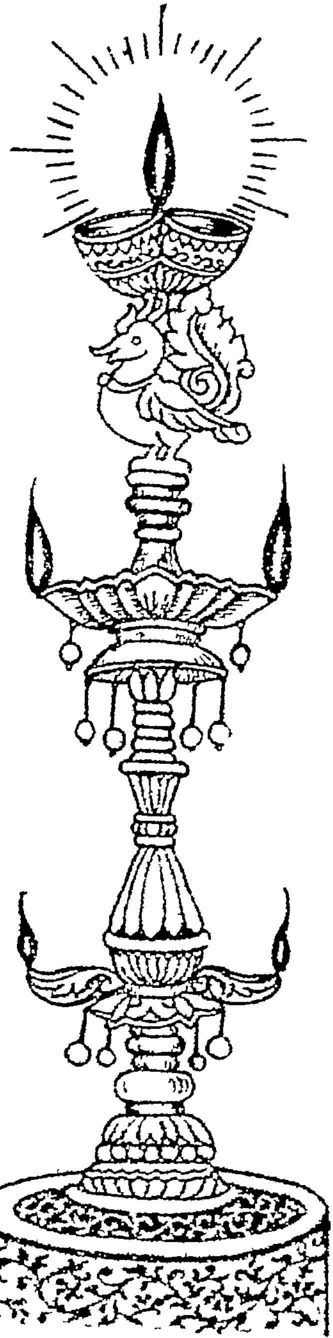

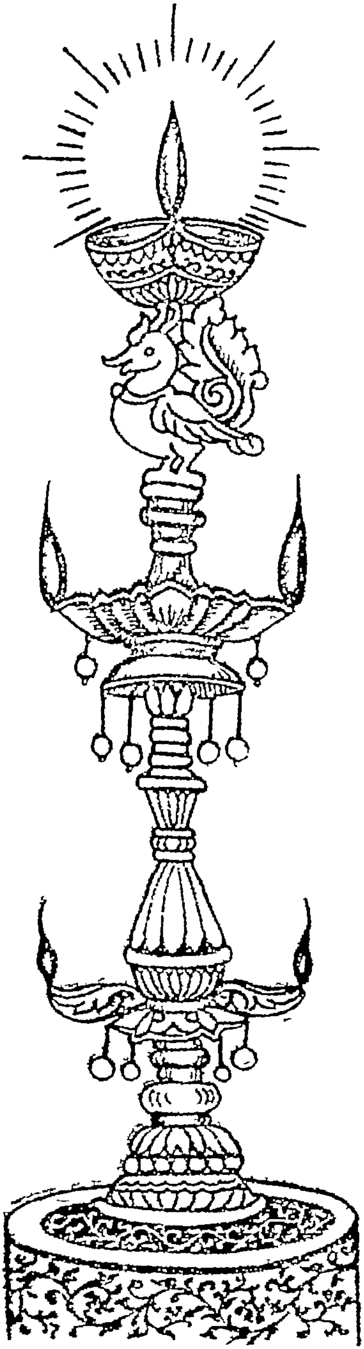

[८५]

तू उसको चाहता है, इसलिये वह तुझे चाहे ही, ऐसा नियम नही है। क्या तुझे जो चाहते है, उनको तू चाहता है ? मन के प्रश्नो का ऐसा समाधान करे, जिस समाधान से मन शान्ति का अनुभव करे। सब शास्त्रो, ग्रन्थो, किताबो आदि से यही तो पढना है ! मन के समाधान की कुंजियाँ ! सदैव प्रसन्न रहने का यही मार्ग है। 'वह क्यो नही चाहता ?' इस प्रश्न का समाधान नही है क्या ?

[८६]

दुनिया का सोचने का ढग दूसरा है। तुझे दूसरे ढंग से सोचना चाहिये। दुनिया का सोचने का ढग अशान्ति पैदा करता है। तू ज्ञानी है। तू भी ससारी अज्ञानी की तरह सोचता है।

इसीलिये तो ज्ञानी दुनिया का ज्यादा नही करते। करते है तो दुनिया की सुनते नही, दुनिया को सुनाते है।

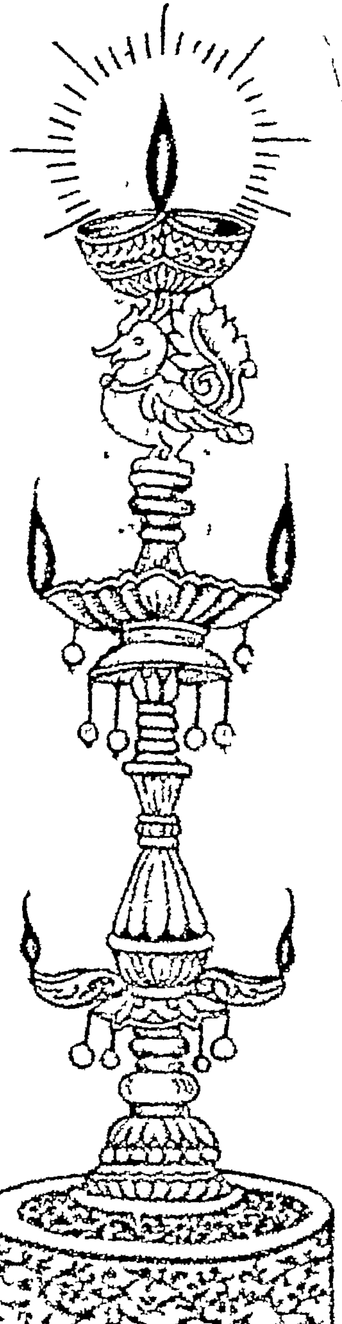

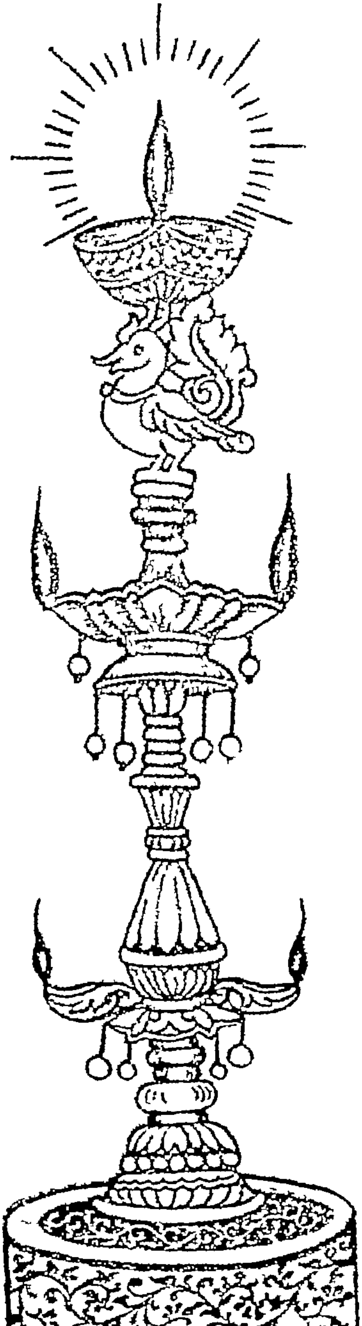

[८७]

सर्वत्र भय और लालच का साम्राज्य छाया हुआ है। धर्मक्षेत्र मे भी भय और लालच कितने व्यापक है? नरक का भय और स्वर्ग का लालच! दु:खों का भय और सुखो का लालच।

भय से धर्म करना इतना बुरा नही समझा जाता जितना सुखो के लालच से। भय और लालच दोनो वृत्तियाँ बुरी हैं। निर्भय और निरीह होना नितान्त आवश्यक है।

[८८]

छोटे-छोटे, मामूली दु.खो के प्रति मन केन्द्रित मत करो। इसी तरह छोटी-छोटी बातो की शिकायते मत करो। इस जीवन मे तो जन्म को जो सब दु खो की जड है, उसको मिटाने का पुरुषार्थ करना है। दु खो से डरकर भागने की बजाय दु.खो को सहन करने की शक्ति बढानी चाहिये। स्वाभाविक रूप से दु.खो को सहन करना चाहिये। मन भारी नही होना चाहिये। दु खो की शिकायत करने से क्या लाभ ?

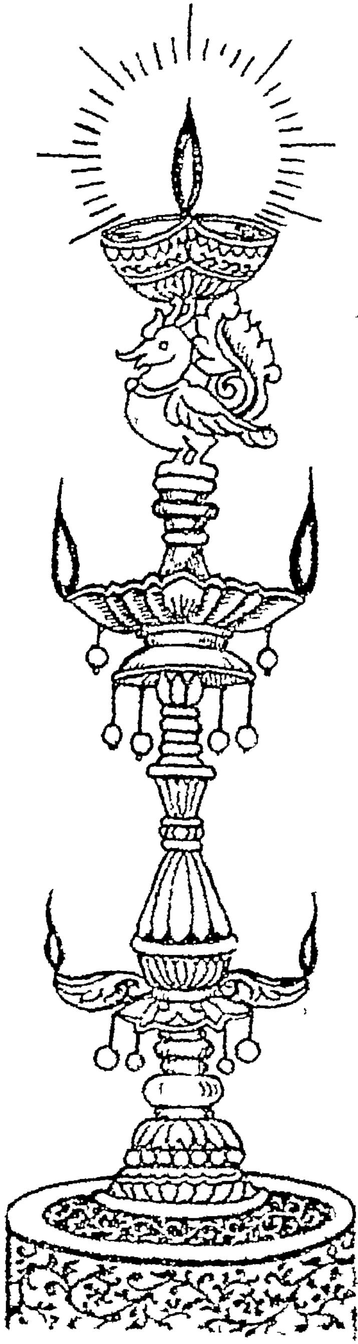

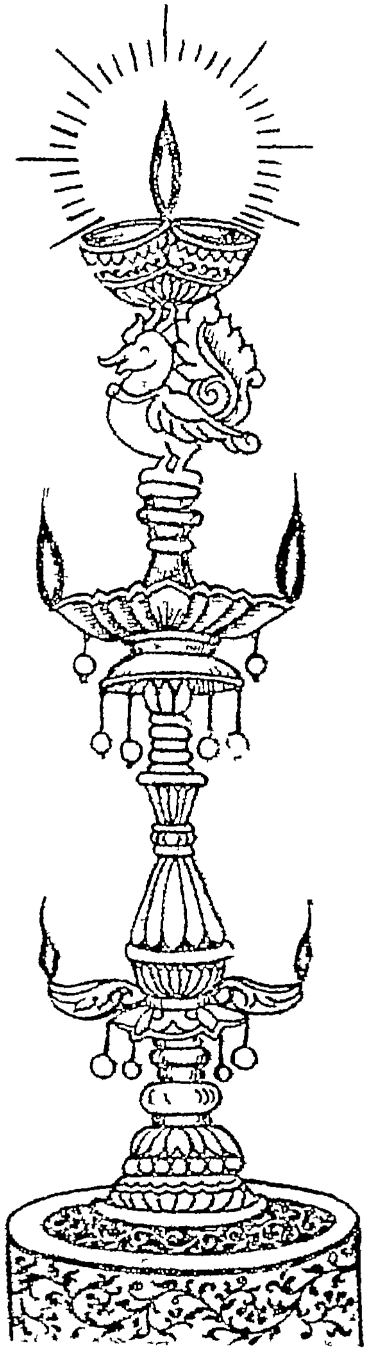

[८९]

किसी के जीवन की चिन्ता करने से क्या ? परन्तु फिर भी चिन्ता हो ही जाती है। जिसके प्रति स्नेह होता है, उसके जीवन की चिन्ता हो ही जाती है। इस चिन्ता से तभी मुक्ति मिल सकती है, जबकि ज्ञानदशा जाग्रत हो।

[९०]

कौन किसके लिए जीता है ? कोई नही। सब अपने लिए ही जीवन जीते है। जीते-जीते दूसरो का भला हो जाय तो अच्छा है।

[९१]

दु:खो का स्वागत हो। Wel-Come! इस जीवन मे जितने दु:खो को आना हो, आजांय, तो अच्छा है। शारीरिक, मानसिक व सामाजिक दु:खो को आने दो। प्रसन्नता के साथ दु:खो का स्वागत करें। दु:खो का अनादर करने से दु:ख वापिस नही लौटते। अनादर करने से ही यदि दु:ख चले जाते तो, इस दुनिया मे कोई दु:खी नही होता। फिर क्यो अनादर करें? अत: स्वागत हो! दु:खो का स्वागत हो!

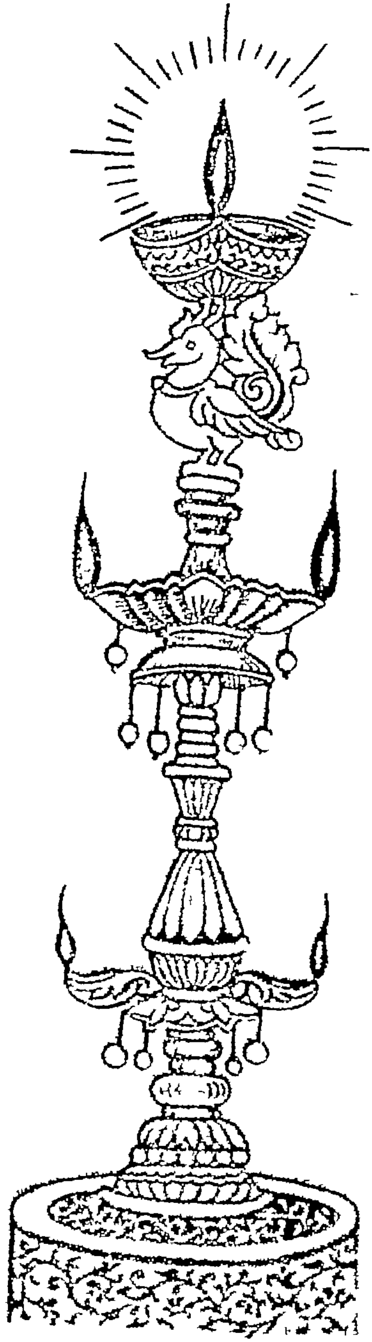

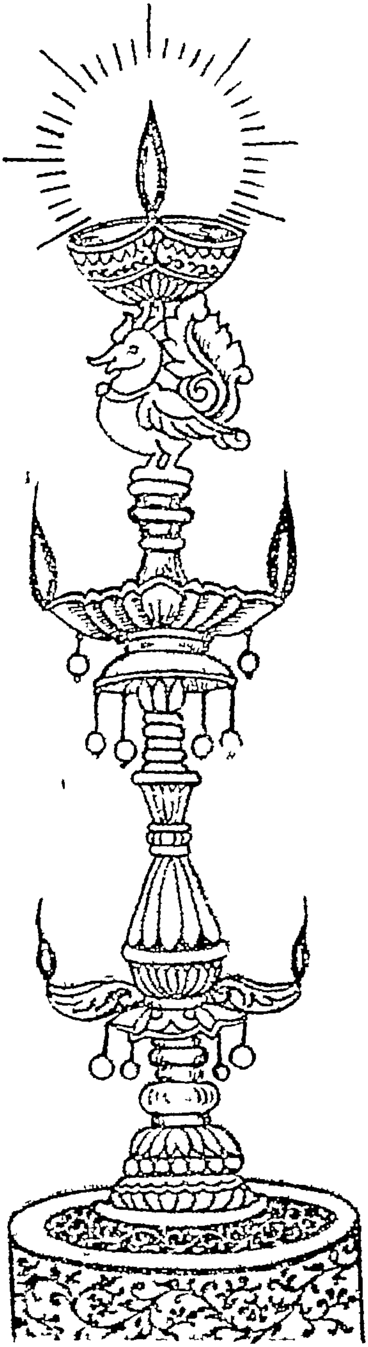

[९२]

पापी के प्रति घृणा क्यों करनी चाहिये ? पापी के प्रति करुणा ही करे। धिक्कार करने से तो पापों के प्रति हमारा मन एकाग्र बन जाता है। फिर धीरे-धीरे पापों के प्रति आकर्षण पैदा होता है और आगे चलकर वह स्वय पापी बन जाता है। पापी के प्रति करुणा ही श्रेष्ठ है। करुणा से उसके उद्धार की भावना पैदा होती है। करुणा से मन स्वस्थ, रहता है। अत. हृदय करुणा से सदैव स्निग्ध रहे। उससे सदैव करुणा बरसती रहे।

[९३]

अपनी भूमिका को समझो ।

भूमिका के कर्तव्यो को समझो । वर्तमान भूमिका के कर्तव्यो को नही समझने वाला मनुष्य उच्चतर भूमिकाओ की बात करता है । अपनी भूमिका सोचना चाहिये, तब अपने कर्तव्यो के प्रति लक्ष्य केन्द्रित कर पुरुषार्थ करना चाहिये। तब विकास होता है, तब उन्नति होती है। परमात्मा जिनेश्वरदेव ने मनुष्य की सब भूमिकाओ को लेकर उचित कर्तव्यो का उपदेश दिया है।

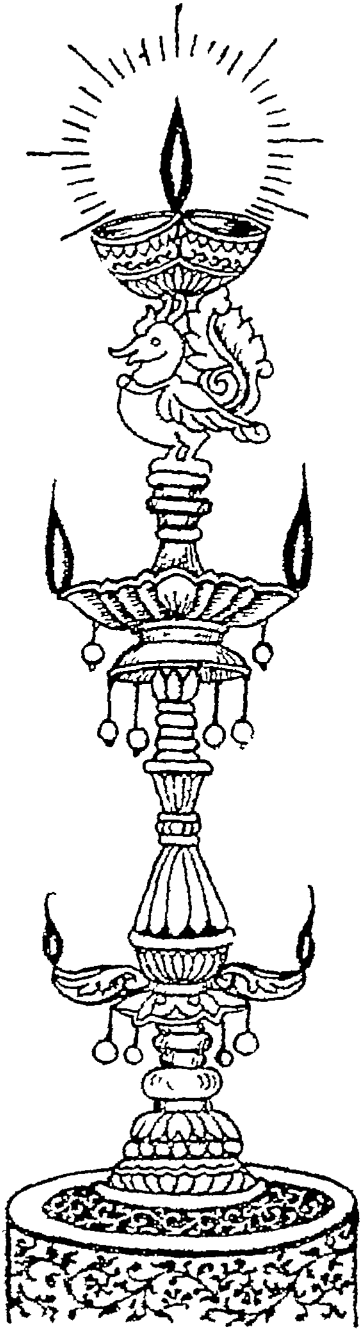

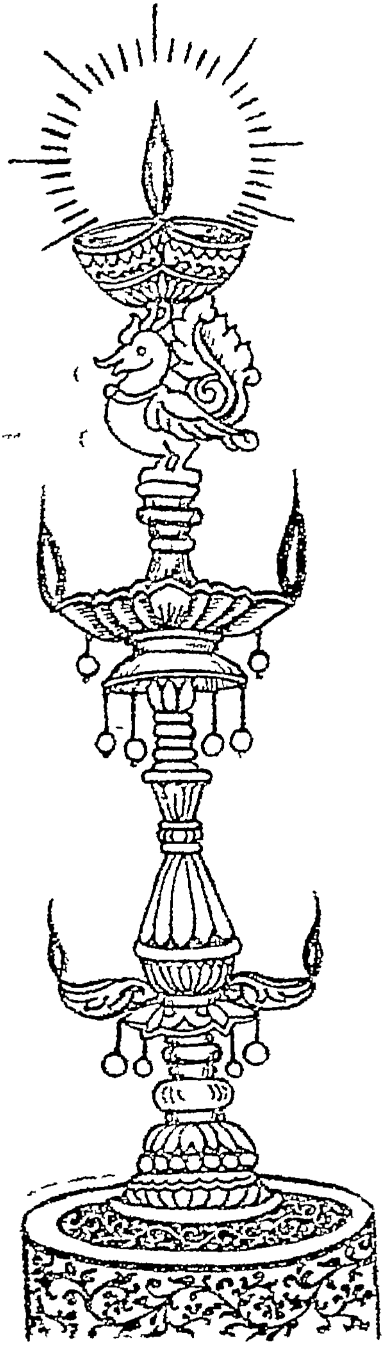

[९४]

कोमलता के विना हृदय मे श्रद्धा कैसे रह सकती है ? प्रथम, हृदय को कोमल होना चाहिये, कठोरता का त्याग करना चाहिये। परमात्मा, सद्गुरु और सत्य के प्रति कोमल हृदय की श्रद्धा होनी चाहिये । श्रद्धा से कर्तव्य निष्ठा पनपती है। श्रद्धा से कर्तव्यपालन की शक्ति पैदा होती है। श्रद्धाहीन हृदय अनेक पिशाचो की समशानभूमि बन जाता है।

[९५]

सब विचारो से मुक्त मन की अनुभूति करने जैसी है। विचारो से मुक्त मन का आह्लाद अपूर्व होता है, जो शब्दो मे नही कहा जा सकता। विचारो का जाल ही तो बन्धन है! इन बन्धनो मे ही दु.ख और अशान्ति है।

ध्यान की महत्ता यहाँ है। ध्यान को जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये।

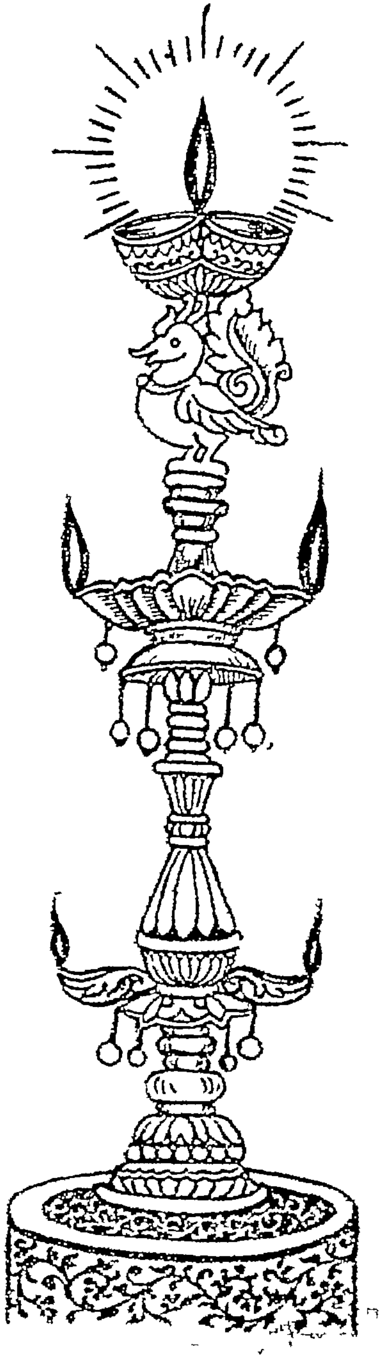

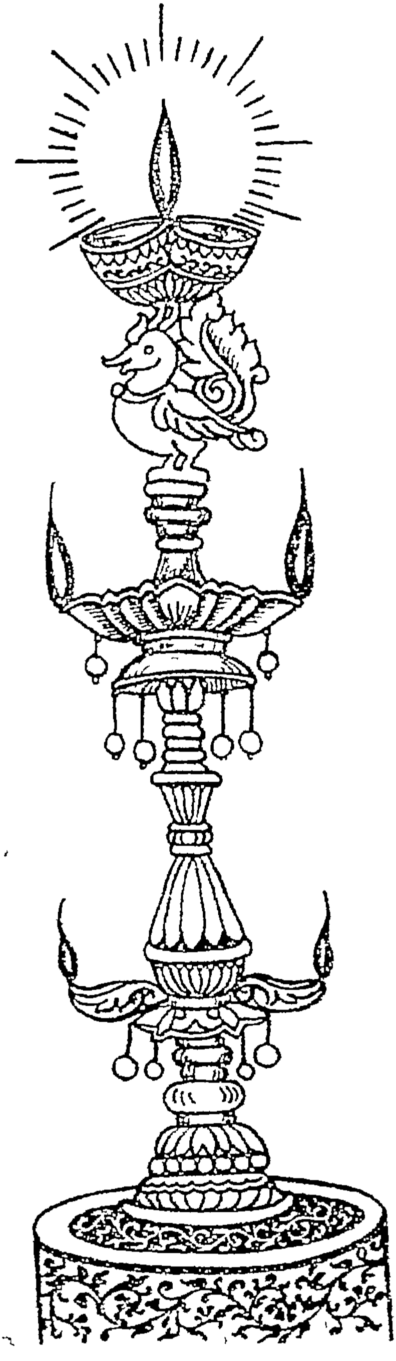

[९६]

किस जीव की कितनी योग्यता है, यह सोच-विचार कर ही उससे आशा करो । योग्यता निर्णय स्वस्थ और मध्यस्थ बन कर करो । इससे कोई व्यक्ति सर्वथा अयोग्य नही दिखाई देगा ।

[९७]

मैं चाहता हूँ कि मेरे निमित्त कोई जीव दु खी न हो । फिर भी मैं कभी निमित्त बन जाता हूँ, मेरा यह दुर्भाग्य नही तो क्या ?

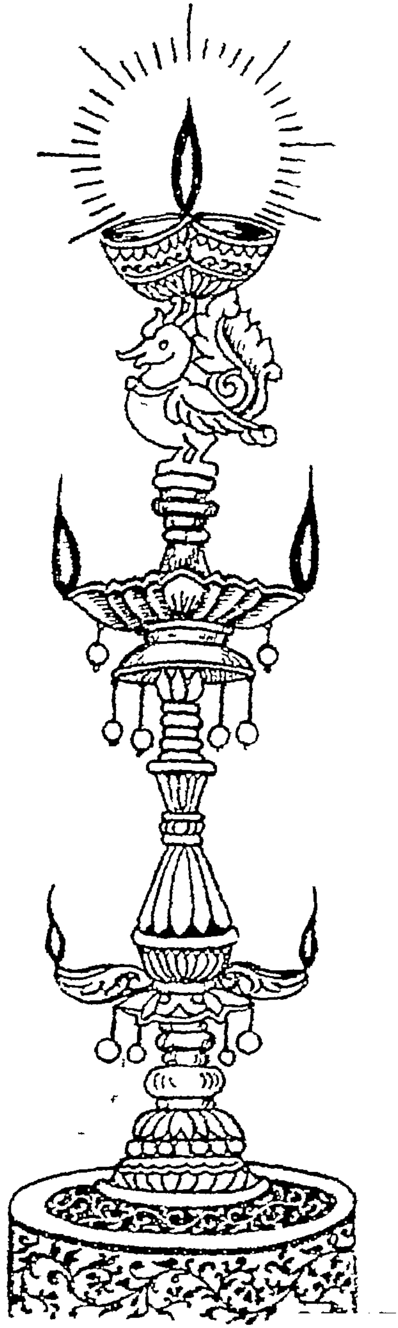

[९८]

जिस धर्म मे मोक्ष देने की शक्ति है, स्वर्ग देने की शक्ति है, उस धर्म मे क्या इस जीवन के दुःखो को मिटाने की शक्ति नही है? धर्म की शक्ति पर विश्वास स्थापित करना नितान्त आवश्यक है। कर्मों की शक्ति से धर्म की शक्ति उच्चतम है। धर्म की शरण लेने से ही धर्म की शक्ति का परिचय मिलता है। निःशक होकर धर्म की शरण मे जाना चाहिये। धर्म की शक्ति पर पूर्ण विश्वास करें।

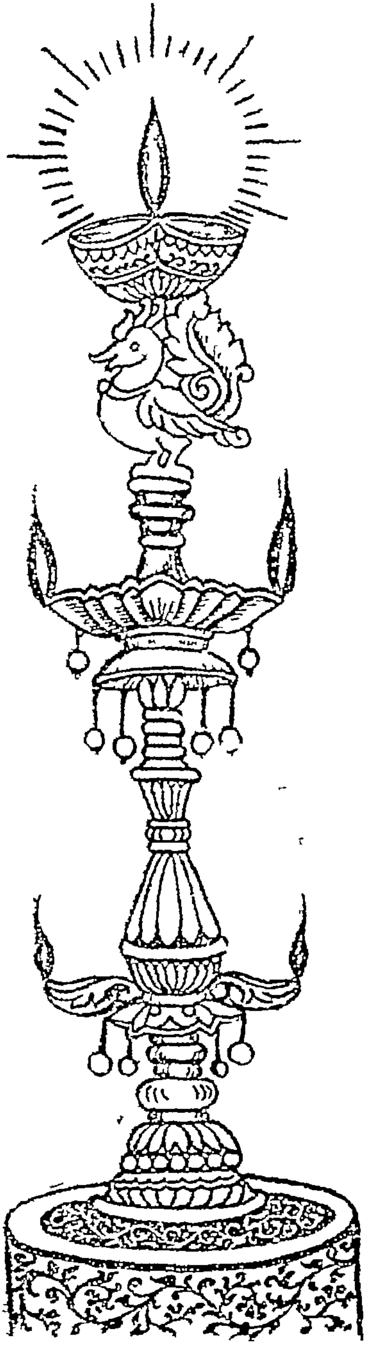

[६६]

इन्द्रिय और विषयो के सम्पर्क से राग, द्वेष और मोह पैदा होता है। जहाँ तक हो सके इन्द्रियों का विषयो से सम्पर्क ही मत होने दो। यदि हो गया, तो तोड दो। तोडने के लिए ज्ञानदृष्टि चाहिये। तोडने के लिए जागृति चाहिये ।

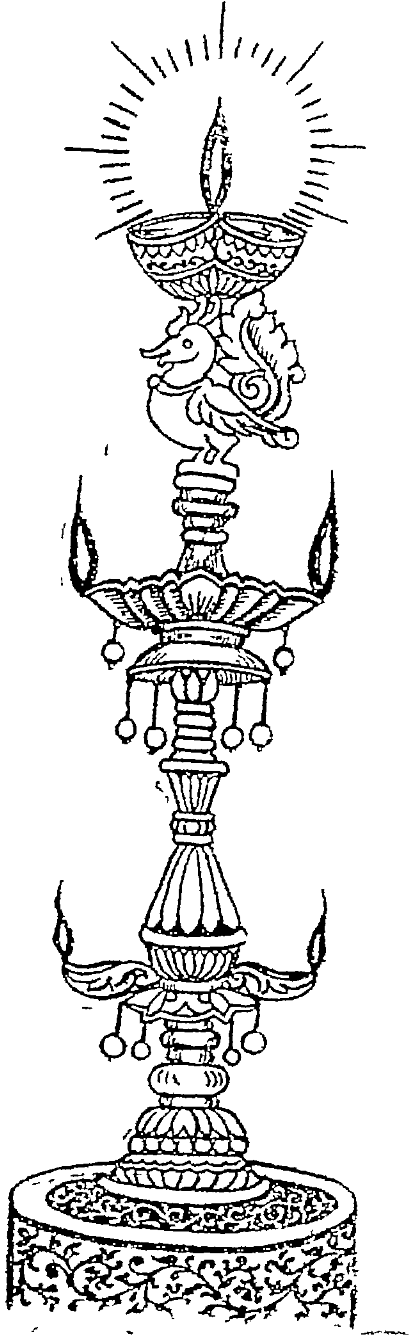

[१००]

स्वार्थी मनुष्य दूसरे जीवो के सुख-दुःख का विचार ही नही कर सकता । फिर चाहे वह स्वार्थ किसी भी बात का हो ! 'मेरा अपयश न हो,' यह भी एक स्वार्थ है और इसी वजह से रामचन्द्रजी ने सीताजी का त्याग कर दिया था न। यश का स्वार्थ भी कभी भयंकर बन जाता है ! स्वार्थ का त्याग बहुत ही बडा है ।

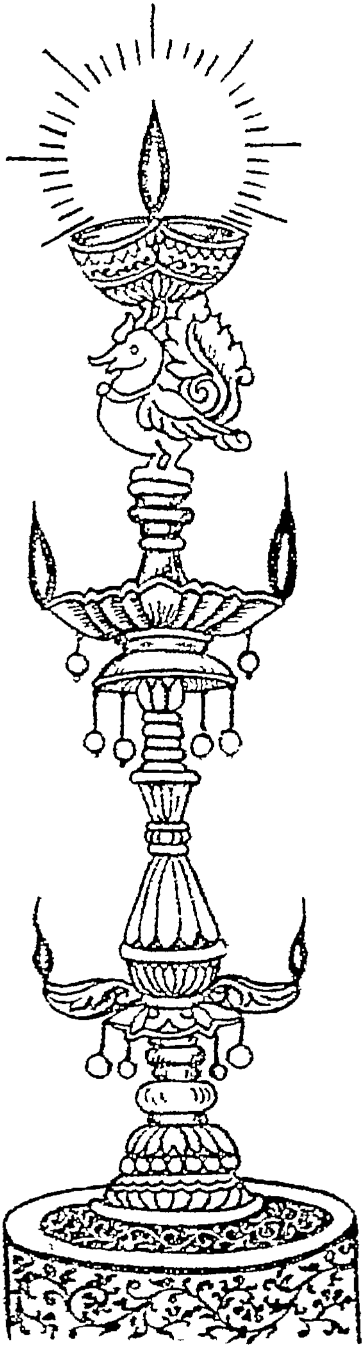

[१०१]

जहाँ तक हम दुनिया मे रहें, वहाँ तक तो विशेष चिन्ता नही; परन्तु जब दुनिया हमारे मन मे बस जाय तब भय है, खतरा है······नाश है। भले ही हम दुनिया मे रहे, हमारे मन मे दुनिया का प्रवेश नही होना चाहिये। हमारे मन मे तो परमात्मा का ही निवास बना रहना चाहिये। जिसके मन मे दुनिया बस गई, उसका पतन ही हुआ ···विनाश ही हुआ समझो।

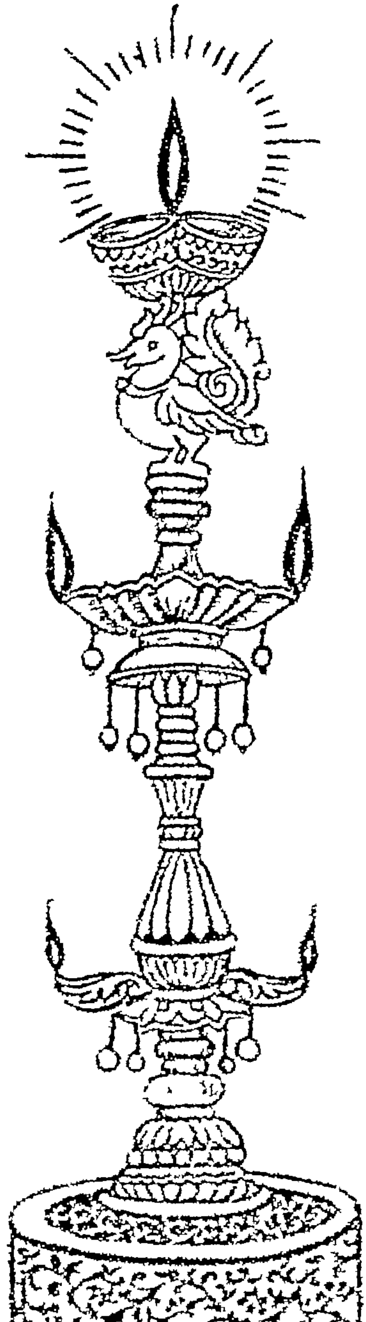

[१०२]

प्रभात के पुष्पो की सुवास,
नीरव निशा का संगीत और
भगवान् अंशुमालि का प्रकाश
सदैव जन जीवन को प्रफुल्लित,
आनन्दित व हर्षित बनाये रक्खें !
शील की सुवास, श्रद्धा का सगीत
और ज्ञान का प्रकाश सब जीवो
को प्राप्त हो ...... सब की
आत्माएँ उन्नति के पथ पर अग्र-
सर हो—ऐसी मेरी पवित्र काम-
नाएँ सदा बनी रहे ।

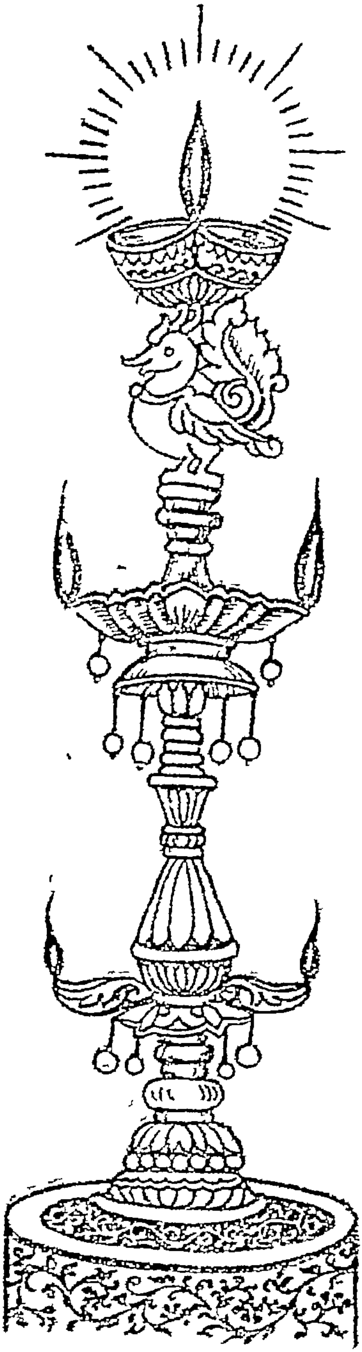

[१०३]

अब तक मनुष्य ज्ञान की गहराई मे प्रवेश नही करता तब तक ज्ञानानन्द प्राप्त नही कर सकता। आत्मानन्द का अनुभव नही कर सकता। ज्ञान की गहराई मे ही समत्व की प्राप्ति है। ज्ञान की ऊपर की सतह पर तो अभिमान का मगरमच्छ फिरता रहता है। सामान्य मनुष्य गहराई पसन्द नही करता, विस्तार ज्यादा पसन्द करता है, कुए से तालाब को ज्यादा पसन्द करता है।

[१०४]

यदि आपके पास ज्ञान की गहराई नही है, भले ही क्रियाओ का विस्तार हो, तो सभावना है कि आप क्रियामार्ग से कभी भी फिसल जाओगे ! तालाव जल्दी सूख जाता है.... ताप पडा नही और तालाव सूखा नही ! विषय कपायो के ताप से कई क्रियावान् सूख गये ......ज्ञान का गहरा कुआ सूखता नही .. भयकर गर्मी मे भी वह शीतल पानी देता रहता है !

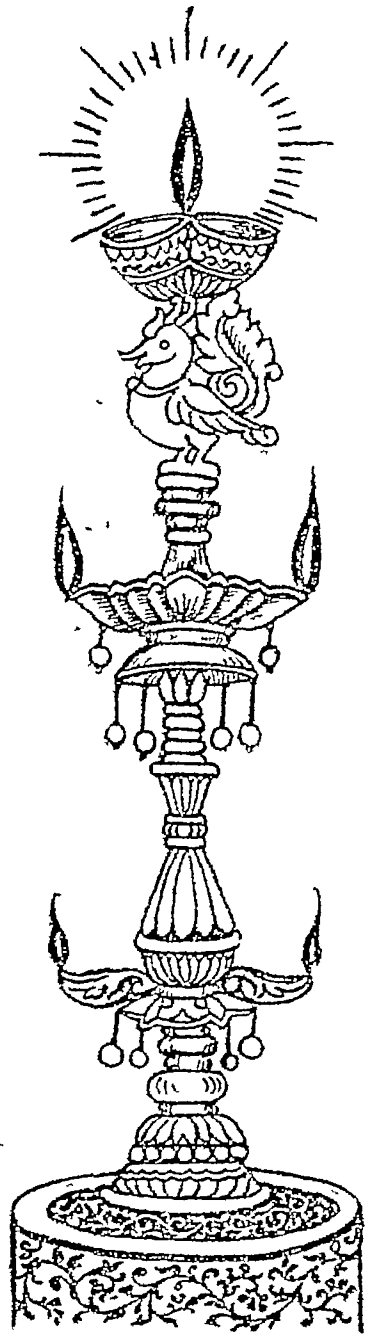

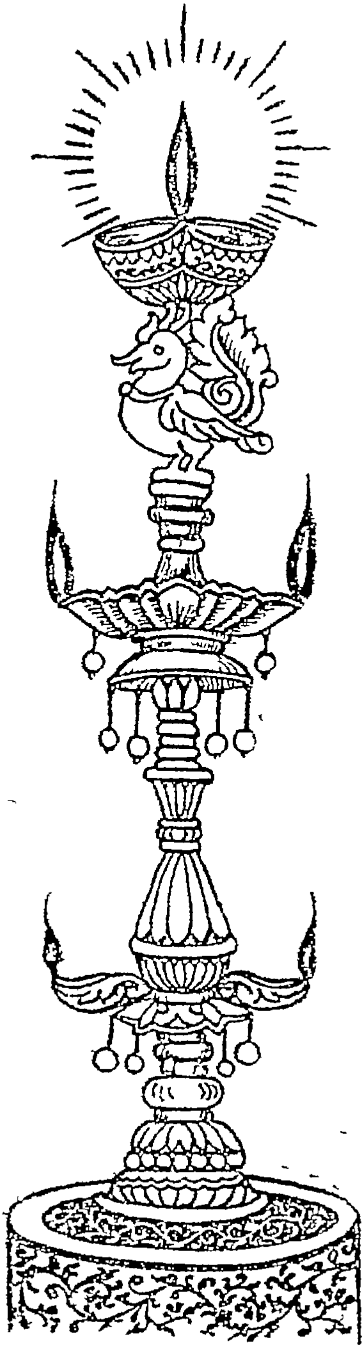

[१०५]

ज्ञानी पुरुष स्वय के मन का तो समाधान अवश्य कर सकता है, परन्तु अज्ञानी के मन का समाधान कर ही सके, ऐसा नियम नही है। कर भी सके और नही भी कर सके। भगवान् महावीर परमात्मा प्रियदर्शना साध्वी को नही समझा पाये, लेकिन उसी को कुंभकार श्रावक ने समझा दिया था।

[१०६]

अनुभव की भूख नही है तो मात्र चर्चा ही चर्चा ! भोजन का भूखा मनुष्य भोजन की चर्चा पसन्द नही करता, उसको भोजन चाहिये। धर्म की भूख लगी है, तो धर्म की चर्चा हो ही नही सकती, धर्म का भूखा तो धर्म का अनुभव करने मे ही पुरुषार्थ करेगा। आजकल धर्म की चर्चा वढगई है ' 'धर्म का आचरण घट गया है।

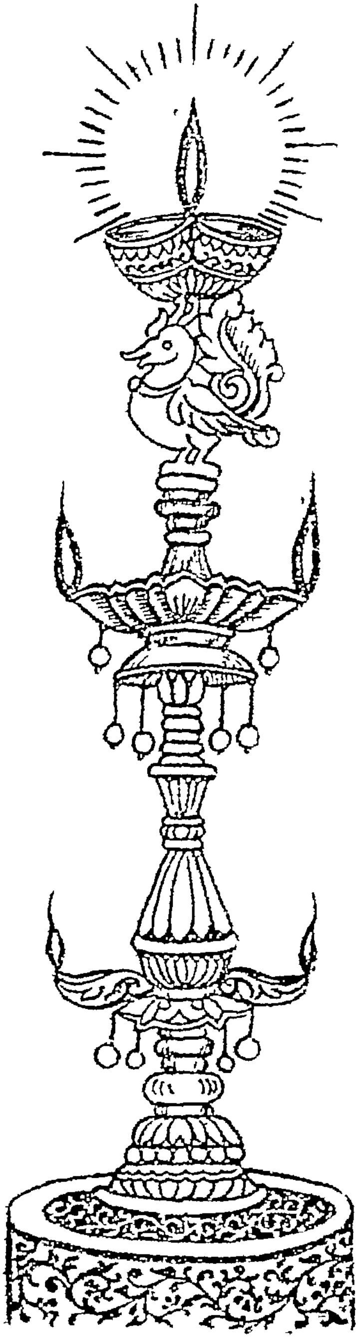

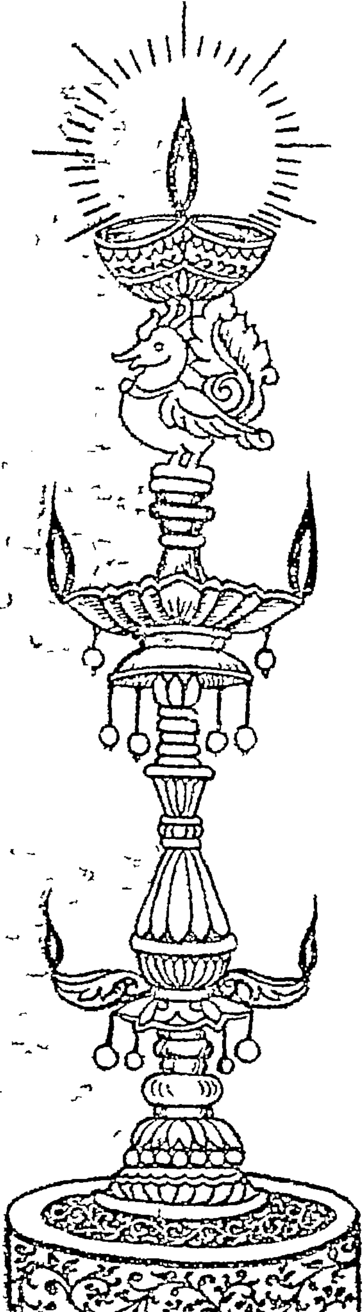

[१०७]

हमारे सामने दो मनुष्य खड़े हैं: एक है, गुणवान् धर्मात्मा और दूसरा है गुणहीन धर्मात्मा। क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता, अहिंसा, सत्य आदि गुणो से सुशोभित धर्मात्मा भले ही धर्म की बाह्य क्रिया कुछ कम करता है, फिर भी हमारे हृदय को वह आकृष्ट करता है। दूसरा मनुष्य धर्म की बाह्य क्रियाएँ ज्यादा करता है, परन्तु उसमे क्षमा नही नम्रता नही, सरलता नही, निर्लोभता नही अर्थात् गुण नही हैं, तो वह हमारी आत्मा को आकर्षित नही करता। वह अपनी आत्मा को भी सन्तुष्ट नही कर सकता। अत. गुणवान् धर्मात्मा बनने का पुरुषार्थ करें।

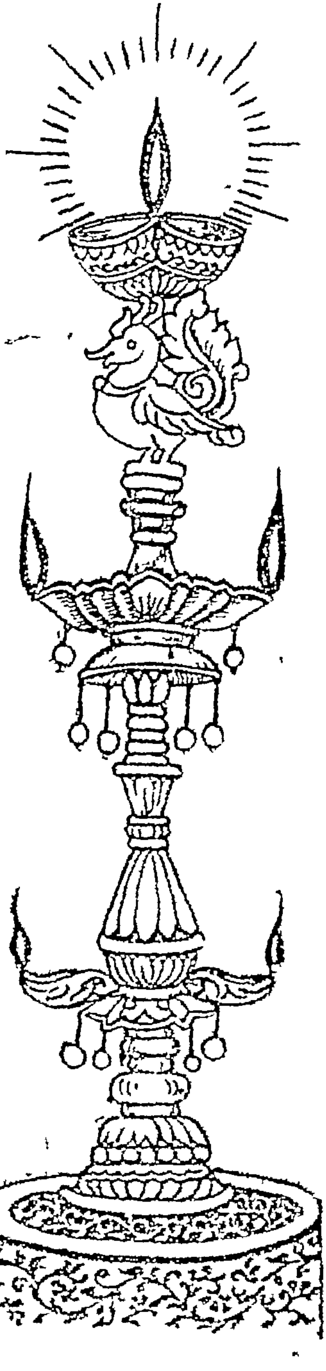

[१०८]

ध्यान करना है? परमात्मा का ध्यान करना है? तो एक काम करो : मन पर से विकल्पो व विकारो का भार उतार दो। विकल्प और विकार ही हमे ध्यान में स्थिर नही होने देते है। दुनिया भर के विचार और विषय सुखो के विकार, मन को अस्थिर चचल, उद्विग्न और सन्तप्त करते है। विचारो से मुक्त वनो, विकारो से मुक्त वनो, परमात्मध्यान मे मग्न हो जाओगे।